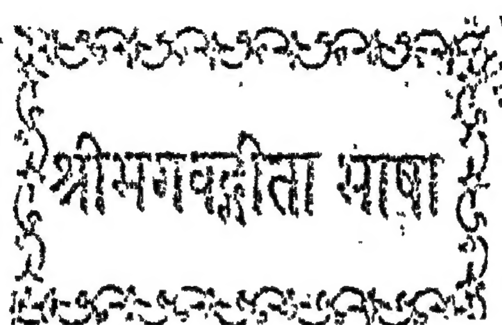
श्रीगणेशाय नमः ।



श्रीभगवद्गीता भाषा

प्रथम अध्याय ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में मिले युद्ध के साज ।
संजय मोसुत पांडवनि कीन्हों कैसे काज ॥

संजय उवाच ।

पाण्डवसेना व्यूह लखि दुर्योधन ढिग आय ।
निज आचारज द्रोण सों बोले ऐसे भाय ॥ २ ॥
पाण्डवसेना अति बड़ी आचारज तू देख ।
धृष्टद्युम्न तव शिष्य ने व्यूह रच्यो जु विशेख ॥ ३ ॥
शूर धनुषधारी बड़े अर्जुन भीम समान ।

द्रुपद महारथ और पुनि हैं विराट युयुधान ॥ ४ ॥
धृष्टकेतु अरु काशिपति चेकितान बलवंत।
कुन्तिभोज अरु शैव्य पुनि पुरुजित शत्रुनिकंत॥ ५ ॥
युधामन्यु अतिविक्रमी उत्तमौज रणधीर।
द्रौपदिसुत अभिमन्यु ये महारथी वरवीर ॥ ६ ॥
मो सेना में जे बड़े ते सब गिन क्षितिराज।
नीके जानो तुम तिन्हैं धरे युद्ध के साज ॥ ७ ॥
तुम अरु भीषम कर्ण कृप जिन जीते संग्राम।
भूरिश्रवा विकर्ण अरु अश्वत्थामा नाम ॥ ८ ॥
औरो बहुते शूर हैं मो लगि तजें जु प्रान।
भाँति भाँति आयुध लिये सने युद्ध बलवान॥ ९ ॥
मो सेना असमर्थ सो भीषम राखत जाहि।
पर सेना असमर्थ सो राखत भीम सुत्राहि ॥१०॥
आसपास मो व्यूह के तुम सो ठाढे होहु।
भीषमकी रक्षा करो मनमें धरिकै कोहु ॥११॥
दुर्योधनको हर्षको भीषमजू चित चाय।
सिंहनाद उच्चै कियो दुस्सह शङ्ख बजाय ॥१२॥
तबहिं शङ्ख भेरी पणव आनक गोमुख भूरि।
ताही छिन बाजत भये शब्द रह्यो भरिपूरि ॥१३॥

श्वेत बरन घोड़े लगे दीरघ रथहि बनाइ।
हरि अर्जुन तापर चढ़े रहसे शङ्ख बजाइ ॥१४॥
देवदत्त अर्जुन लियो पांचजन्य यदुराय।
भीष्म भयानक भय दयो पांडव शङ्ख बजाय ॥१५॥
नृपति युद्ध सिरहू कियो अनँत विजयको घोष।
पुनि सहदेव जु नकुलने मणि पुष्पक रु सुघोष ॥१६॥
महाधनुर्धर काशिपति रथी शिखंडी जान।
धृष्टद्युम्न विराट अति बली सात्यकिहि मान ॥१७॥
द्रुपद द्रौपदीसुत सबै और सुभद्रापूत।
अपने अपने शङ्ख ले धुनि कीन्ही तासूत ॥१८॥
फट्यो हियो कौरवनको शब्द सुन्यो ता बार।
पृथ्वी अरु आकाश में पूरि रह्यो गुंजार ॥१९॥
देखे सुत धृतराष्ट्र के अर्जुन धनुष सँभारि।
कपिवर ताकी ध्वज लसै शस्त्र न परत निहारि ॥२०॥

अर्जुन उवाच।

अर्जुन कहै जु कृष्णसों मेरे चित यह चिन्त।
दुहुँ सेना के मांझ रथ ठाढ़े कर मो मित्त ॥२१॥
जब लग देखों हौं इन्हैं जुरे युद्ध के दाय।
कौन कौनसों हौं लरौं या रण में सम पाय ॥२२॥

युद्ध करन योधा जिते आये हैं या साज।
दुरबुद्धी कौरवन के भले करन के काज ॥२३॥

संजय उवाच।

ऐसे कहि श्रीकृष्ण जू सुनि अर्जुन की बात।
दोऊ सेना मांझ रथ लै राख्यो ता घात ॥२४॥

भगवानुवाच।

भीषम द्रोणहि आदि दै नृप जु हते ता ठौर।
अर्जुनसों बोलत भये कहि कौरवकी ओर ॥२५॥
अर्जुन ते देखे सबै पिता पितामह भाय।
गुरु मामा भैया सखा सुत नाती के दाय ॥२६॥
ससुर सुहृद बंधू सकल दोऊ सेना माह।
तिनहिं देखि करुणा भई तब बोले नरनाह ॥२७॥

अर्जुन उवाच।

देखे सब मैं बन्धु ये कृष्ण युद्ध के दाय।
मो मुख सूखत जात है अंग अंग शिथिलाय ॥२८॥
रोम हर्ष मो हृदय में और कम्प बहुभाय।
धनुष गिरत मो हाथ ते त्वचा तपत अधिकाय ॥२९॥
ठाढ़ो ह्वैहौं नाहिं सकत भ्रमत जु मो मन सीत।
केशव शकुन न देखिये कैसी है यह रीत ॥३०॥

सुनत हनौं संग्राम में ताते हरि इमि जान ।
अपनो भलो न देखियत है विपरीत सुजान ॥३१॥
विजय न चाहौं कृष्ण जू नहिं चाहौं सुख राज ।
राज भोग गोविन्द जी अरु जीवहिं किहि काज ॥३२॥
राज भोग सुख कृष्णजू करियत इनके काज ।
लरन जीव धन छांड़िये हम नहिं चाहत राज ॥३३॥
गुरु साला सुत ससुर जन सारे नाती देख ।
ये मारें मोको यदपि हौं नाहिं हनौं विशेख ॥३४॥
राज तजौं तिहुँ लोक को कितो इती यह भूमि ।
सुतन हनौं धृतराष्ट्र के कित सुख रहिहै भूमि ॥३५॥
पाप होइ इनके हने यदपि लिये हथियार ।
ताते ये हनिये नहीं बन्धु सहित निरधार ॥३६॥
कृष्ण सुजन को मारिकै सुख लहिये का आइ ।
ये जु भुलाये लोभसों नहिं देखैं या दाइ ॥३७॥
जो पै ये देखैं नहीं लोभ करहिं बेचेत ।
कुलक्षय मित्र द्रोह को सब अघ के जु निकेत ॥३८॥
क्यों न कहौं या पापते हमहिं निवारन काज ।
दोष जु कुलक्षय करत हूँ देखैं श्रीयदुराज ॥३९॥
कुलक्षय भयेते धर्मकुल जात जु सबै नशाइ ।

धर्म नशहि कुल को तबहिं होत अधर्म सुभाइ॥४०॥
कृष्ण अधर्महिं के बढ़े दुखी होहिं कुलनारि।
होहिं वरणसंकर तबहिं तियहि दोष निरधारि॥४१॥
नरक परैं संकर भये कुलघाती जे लोइ।
गिरहिं पितर तिन सबनके पिंड देइ नहिं कोइ॥४२॥
कुलहिं वरणसंकर भये डारत दोष बढ़ाइ।
जातधर्म कुलधर्म जे तेऊ देत नशाइ॥४३॥
कुलधर्मन के नशतही निश्चय यह ही होय।
सदा नरक में ते रहैं यह जु कहत सब कोय॥४४॥
बड़े पाप के करन को निश्चय कियो विचार।
चित में आन्यो राजसुख हनत कुटुंब निरधार॥४५॥
शस्त्र पाणि बिन मोहिं जो पकरि लेहिं हथियार।
धार्तराष्ट्र मो को हरैं सो मोहिं है सुखसार॥४६॥

संजय उवाच।

ऐसे कहि अर्जुन तबहिं बैठि गयो रथ माह।
करते डारे शर धनुष शोक बढ़्यो नरनाह॥४७॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे अर्जुनविषादोनाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीय अध्याय।

संजय उवाच।

लै उसाँस अँखियाँ भरैं अर्जुन करुणा भाइ।
यहु विषाद संयुक्त लखि बोले श्रीयदुराइ॥ १॥

श्रीभगवानुवाच।

अर्जुन या संग्राम में कत दुख पायो मीत।
कीरति अरु स्वर्गहि हरैं कायर ज्यों भयभीत॥ २॥
कायरता तू जानि करै यह तोको नहिं योग।
छाँड़ि कचाई जीय की गहि शस्त्रन को भोग॥ ३॥

अर्जुन उवाच।

दुहुँ सेना में कृष्ण जी हैं भीषम अरु द्रोन।
पूजों के शर सों हनों मोसों कहिये सोन॥ ४॥
भीख मांगि अरु खाइये गुरु हनिवो जो अनीति।
गुरुहि मारि भोगहि करौं भषों सुलोहू रीति॥ ५॥
यहै जु हम नहिं जानहीं हारि होय कै जीत।
जिन्हैं मारि हम महि जियें ते गाढ़े हैं मीत॥ ६॥
धर्म मांझ मैं मूढ़ हौं पूछत कृपण सुभाय।
दीन तुम्हारी शरण हौं दीजै युक्ति बताय॥ ७॥

संजय उवाच।

ऐसे कहि श्रीकृष्ण से अर्जुन ताही बार।
युद्ध न हौं हरि जू करौं कीन्हों यह निरधार ॥ ८ ॥
भूमि लोक सुरलोक को लहौं अकंटक राज।
इन्द्रिय सोखत जीव को जाइ न शोक समाज ॥ ९ ॥
दोऊ सेना मांझ यों अर्जुन कियो विषाद।
कृपावंत श्रीकृष्णजू कीन्हों वचन प्रसाद ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच।

शोच अशोची क्यों करत कहत ज्ञान की बात।
शोच न पण्डित करतहैं जीवन उपजत जात ॥ ११ ॥
हम तुम अरु नरपति जिते इनको नाश न होइ।
तिहूं काल में थिर रहैं या देही में दोइ ॥ १२ ॥
देही के जिमि देह में कुमारादि जस होय।
तैसे देही नर लहै मोहत धीर न सोय ॥ १३ ॥
अर्जुन इन्द्री चित्त मिलि विषय जु दुख सुख देत।
शीत उष्ण नहिं थिर रहैं सहि तिन को तू हेत ॥ १४ ॥
जाके व्यथा न होइ कछु सुख दुख गिनै समान।
बाड़े घरै मुक्तिहि लहै बात यहै परमान ॥ १५ ॥

जो है सो विनशै नहीं जो विनशै सो नाहिं।
जो इन तत्त्वन को लखै गनिये ज्ञानिन माहिं॥१६॥
जासों पग यह है भस्यो सो अविनाशी जान।
जाहि विनाशि न कोउ सकै ताहि आतमा मान॥१७॥
अंत वस्तु सब देह है जीव रहत है नित्त।
अविनाशी यह वस्तु है युद्ध करै किन मित्त॥१८॥
जो याको हंता गनै हन्यो गनत जो कोय।
यह न मरै मारै नहीं अज्ञानी वे दोय॥१९॥
यह न मरै उपजै नहीं भयो न आगे होइ।
अजर पुरातन नित्य है मारे मरै न सोइ॥२०॥
जो जानंत है आतमा अज अविनाशी नित्त।
सो नर मारै कौन को ताहि हनै को मित्त॥२१॥
जैसे पट जीरन तजै पहिरत नर जु नवीन।
देह पुरानी जीव तजि नई गहत परवीन॥२२॥
यह न कटै हथियार सों पावक सकै न जारि।
भीजि सकै जल नाहिं नैं सोखि सकै न बयारि॥२३॥
कटै जरै सूखै नहीं और न भीजन योग।
नित्य रहै सब ठौर थिर अविनाशी बिन रोग॥२४॥
प्रकटत नहीं अचिन्त्य है अविकारी तू जान।

ऐसे याको जानि कै शोक लहै जनि मान ॥२५॥
जो तू जानत जीव को जनम मरण पुनि होइ ।
तनक शोक तू जनि करै मन दृढ़ता में जोइ ॥२६॥
जो उपजै सो विनशिहै मरै सो उपजै आइ ।
होनहार सो होत है तहां न शोच बढ़ाइ ॥२७॥
पाछे जाइ न जानिये आगे परे न जान ।
सांझहिये कुछ देखिये ताको शोच न मान ॥२८॥
जो याको देखै कहै सोऊ अचरज भाय ।
सुनै अचम्भव सो लगे यह जान्यो नाहिं जाय ॥२९॥
जीव न मार्यो जात है बसत सबन की देह ।
तासों शोच न कीजिये करि काहू सों नेह ॥३०॥
अपनो धर्म विचार तू जनि छांड़ो संग्राम ।
धर्मयुद्धते छत्र यह और न कछु अभिराम ॥३१॥
अपनी इच्छाते लह्यो खुल्यो स्वर्ग को द्वार ।
भागवंत क्षत्रिय लहैं ऐसो रण या बार ॥३२॥
और धर्म संग्राम को जो तू करि है नाहिं ।
तजि कीरति निज धर्म अरु परिहै पापन माहिं ॥३३॥
सबै लोक कहि हैं अबहिं तेरो अयश बढ़ाइ ।
अयश प्रतिष्ठावन्त को मरणहुते अधिकाइ ॥३४॥

भयते अर्जुन रण तज्यो यों कहिहैं ये वीर।
तोहिं बहुत कर मानते अब लघु ह्वैहौ धीर ॥३५॥
तेरे अरि सब कहेंगे जे अनकहनी बात।
निज घाटा सुनि पाइकै बहु दुख लागत तात ॥३६॥
लरत मरे लहिहै स्वरग जीते पुहुमी भोग।
उठि अर्जुन तू युद्धकर निश्चय तोको योग ॥३७॥
लाभ हानि अरु दुःख सुख जीत्यो हार समान।
ताते अर्जुन युद्ध कर पाप लेहि जनि मान ॥३८॥
सांख्य बुद्धि तोसों कही कहत योगविधि तोहिं।
ता बुधि के संयोग से रहै न कर्मनि मोहिं ॥३९॥
कर्म करै बिन कामना ताको होइ न नाश।
अल्प कियेहू धर्म तिन काटत भव भय फाँश ॥४०॥
बुद्धि जु निश्चयवंत को एकै है तू जान।
जिनके निश्चय नाहिंनै तिनहीं बहुविधि मान॥४१॥
जे नहिं मानत स्वर्गफल ते अज्ञानी लोइ।
कहत जु यों कछु औरही तिनमें ज्ञान न होइ ॥४२॥
स्वर्गलाभ की कामना रहित जु तिनके चित्त।
भोग बड़ाई के लिये करत क्रिया सों हित्त ॥४३॥
भोग बड़ाई कामना तिनके चित हरि लेत।

निश्चय कर ते बुद्धि को नाहिं समाधि में देत ॥४४॥
त्रिगुण कर्म से कहत हैं वेद सु तू जिहि मित्त ।
धीरज धरि दुख सुखहि सहि योगक्षेम तजि चित्त ॥४५॥
सरिता सागर कूप सों सरत जु एकै काज ।
तैसे जाने ब्रह्म को लहै वेद को साज ॥४६॥
तो अधिकार जु कर्म सों नाहिं फलन सों हेत ।
कर्मन के फल छांड़ि दे करि सुकृतहि में चेत ॥४७॥
योगस्थित ह्वै कर्म करि सबै संग जो त्याग ।
सिद्धि असिद्धि समान गनि यहै योग अनुराग ॥४८॥
बुद्धियोग सों कर्म को अर्जुन तू घटि जानि ।
शरण होहि तू बुद्धि की दीन कामना मानि ॥४९॥
बुद्धि युक्ति दोऊ तजै कहा पुण्य कह पाप ।
बुद्धि कर्म में चतुरई सोई करि तू आप ॥५०॥
चाहत नहिं जे कर्मफल ते पंडित बड़भाग ।
जन्मबंध को छांड़ि कै लहैं मुक्ति अनुराग ॥५१॥
मोह सघनता जब तजै अर्जुन तेरी बुद्धि ।
तब लहिहै वैराग्य तू चित में करि कै शुद्धि ॥५२॥
तेरी बुधि वैराग्य में थिर रहिहै जब मित्त ।
तब लग मेरे योगसे ह्वै है निश्चल चित्त ॥५३॥

अर्जुन उवाच।

जाकी बुधि निहचल सदा ताके चिह्न बताइ।
कैसे बोलत क्यों रहत चलत जु है किहिभाइ ॥५४॥

श्रीभगवानुवाच।

जे हैं मन में कामना तिनको तजै जु कोइ।
आतम सों संतोष गहि निहचल बुद्धि सु होइ ॥५५॥
दुखको तजि भागै नहीं सुख चाहै नाहिं चित्त।
रहित नेह औ क्रोध भय निहचल बुद्धि सुमित्त ॥५६॥
नेह न काहू सों करै भले बुरे को पाय।
भले बुरे सों सुख न दुख सो थिर बुद्धि कहाय ॥५७॥
जो कछुवा निज अंग को खैंचि आप में लेत।
तैसे खैंचै इन्द्रियन तजि विषयन सों हेत ॥५८॥
विषय करत है दूर जो सो तजि है आहार।
आतम देखै जातु है अभिलाषा निरधार ॥५९॥
ज्ञानवंत जे पुरुष हैं यत्न कठिनता साधि।
इंद्री अति बलवंत हैं तऊ लगावत व्याधि ॥६०॥
ताते रोकै इन्द्रियन मो में चित को लाइ।
सब में करिकै ये सबै सो थिर बुद्धि सुभाइ ॥६१॥
नर ध्यावत है विषय को जाते उपजत संग।

काम जु उपजत संग ते ताते क्रोध अभंग ॥६२॥
मोह होत है क्रोधते मोहोंते बुधिनाश ।
सुद्धि गये बुद्धी नशत बुद्धि गये मृतपाश ॥६३॥
राग द्वेष को जो तजै तजै विषय की सेव ।
इन्द्री जो निज वश करै लहै शान्ति को भेव ॥६४॥
शान्ति जबै यह गहत है होत दुखन की हानि ।
बुधि तबहीं थिर होति है यह लीजो तू मानि ॥६५॥
योग विना बुद्धिहु नहीं बुधि बिन होइ न ध्यान ।
ध्यान विना सन्तोष नहिं सुख न शांति बिन जान॥६६॥
इन्द्री जित जित फिरति है तित मन लावति खैंचि ।
मन जु बुद्धि हरिलेत है वायु नाव ज्यों ऐंचि ॥६७॥
जिन इन्द्री रोकी सबै ठौर ठौर ते आनि ।
विषय त्याग है जिन कियो थिरबुधि ताही मानि॥६८॥
जागत हैं जहँ संयमी जहाँ सबन की राति ।
जीव सबै जागत तहाँ सो मुनि को निशि भाँति॥६९॥
जैसे जल सब सरित के मिलत समुद्रहिं जाय ।
त्योंही सबही कामना शान्त रहैं तहँ आय ॥७०॥
तजिकै सब मनकामना जो नर निस्पृह होय ।
अहंकार ममता तजै तामें शान्ति जु होय ॥७१॥

ब्रह्मज्ञान तोसों कह्यों जाते मोह नशाय।
बुधि जो अंत समय रहै मिलै ब्रह्म में जाय ॥७२॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे शान्तियोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय।

अर्जुन उवाच।

बुद्धि भली है कर्म ते कृष्ण कही तुम जोहि।
कर्मनिधन में जो कहा संशय होत है मोहि ॥ १ ॥
वचन सुने सन्देह के मो बुधि है भरमाति।
निश्चय करि याको कहौ लहौं मुक्ति जा भाँति ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच।

नेष्ठा जो द्वै भाँति की पहले कही बनाय।
कर्म श्रेष्ठ है बुद्धि ते याहि बिन यह नशि जाय ॥ ३ ॥
कर्म विना कीये पुरुष ज्ञानहिं लहै न कोय।
किये विना संन्यास के दोऊ मुक्ति न होय ॥ ४ ॥
कर्म किये विन क्षणकहू रहै न कोऊ जंत।
विवश भये कर्मन करै बँधि माया के वंत ॥ ५ ॥

कर्म इन्द्रियन रोंकि कै मन विषयन को ध्यान।
कपटी मूरख है बड़ो ताको दम्भी जान ॥ ६ ॥
मन सों रोकै इन्द्रियन कछु कर्मन परचाय।
फल अभिलाषा को तजे ज्ञाते यह अधिकाय ॥ ७ ॥
अन करिबे ते कर्म कहि भलो सु तू करि मित्त।
बिन कीने ते कर्म यह देह निमित है नित्त ॥ ८ ॥
यज्ञ कर्म बिन कर्म जे जग बन्धन ते होत।
तिहि काजे कर्मनि करै मिटै फलन को गोत ॥ ९ ॥
यज्ञ सहित रचि जगत को पहले केहि विधि बात।
उदय तिहारो जगत में कामधेनु यह बात ॥ १० ॥
यज्ञनि करि देवन भजौ देव तुम्हैं फल देहि।
वृद्धि परस्पर यों करो मन वांछित फल लेहि ॥ ११ ॥
इष्टभोग को देत है देव भजे ते मित्त।
बिन पूजे ते लेत हैं ते हैं चोरनि चित्त ॥ १२ ॥
यज्ञशेष जे खात हैं पापन डारत धोय।
यज्ञ बिना जे खात हैं अघ नित लहत हैं सोय ॥ १३ ॥
जीव अन्न ते होत है अन्न मेह ते होय।
मेह यज्ञ ते होत है यज्ञ कर्म ते जोय ॥ १४ ॥
कर्म जु उपजत वेद ते वेद ब्रह्म ते मान।

ब्रह्म जो भाषा सबनि में ताहि यज्ञ करि जान ॥१५॥
वेद बनाये कर्म जे वर्णन करत जे कोय।
पाप इन्द्रियन वश भये जन्म रहत हैं खोय ॥१६॥
आतम सों सन्तुष्ट जे आतम सों रति होय।
त्रिपत जु आतम सों रहै ताहि न करनो कोय ॥१७॥
जाहि करैं जे पुनि नहीं बिन कीये नहिं होय।
ब्रह्मादिक सों काम नाहिं आतम हीं सों मोय ॥१८॥
फल कामन को छांड़िकै कर्म करो तुम निच।
संग बिना कर्मन करै मुक्ति लहै नर मिच ॥१९॥
लही सिद्धि सनकादिहू कीन्हे कर्म समाज।
लोकरीति जो देखिये तुमहूँ करो सुकाज ॥२०॥
बड़े जु आचारहि करैं सोई माने आन।
ताही मग सब जग चलै बड़े करहिं जु प्रमान ॥२१॥
मोंको कछु करनो नहीं तिहूं लोक में काज।
न कछु लहौं लह्यो न कछु कर्म करत यह साज ॥२२॥
जु हौं कर्म बिनहीं करा रहौं आलसी मीत।
तौहू सब नरहू गहैं मेरे मग की रीत ॥२३॥
जो हौं कर्मनि नाहिं करौं होइ सबन को नाश।
प्रकटाऊं संकर तबै हनहुं प्रजा या आश ॥२४॥

मूरख जो कर्मनि करै करि बहु प्रीति सुभाय ।
लोककार्ज ज्ञानी करै मन तासों न लगाय ॥२५॥
तिनकी बुधि भेद न तजै रहै कर्म लपटाय ।
सावधान ज्ञानी रहै पेखे ते इन्द्राय ॥२६॥
माया के गुण कर्म हैं सबै कर्म यह जानि ।
अहंकार कर मूढ़ जे लेत अपनपो मानि ॥२७॥
गुण अरु कर्म विभाग को जानत तत्त्व जु कोय ।
इन्द्री विषयन सों पगीं आप मगन नहिं होय ॥२८॥
माया गुण करि मूढ़ जे रहैं विषय लव लाय ।
ता सँग ते ज्ञानी तिन्हैं देइ न कहूँ चलाय ॥२९॥
चित अध्यातम आनिकै कर्मन मो में राख ।
अहंकार ममता तजै युद्धहि को अभिलाख ॥३०॥
जे नित या मेरे मतहि श्रद्धा सों गहि लेत ।
तिनको जिय निष्कर्म हैं कर्म तजैं करि चेत ॥३१॥
जे मेरे या मतहि को करत न दोष लगाय ।
ते मूरख जानैं नहीं हैं अचेत के भाय ॥३२॥
ज्ञानवन्तहू करत हैं अपनी प्रकृति समान ।
सब कोऊ निज प्रकृतिवश रोकै ते जु अज्ञान ॥३३॥
सब इन्द्रिन को विषय में राग द्वेष जो होय ।

तिनके वश नर नाहिं रहै रहै जु अरि सम जोय ॥३४॥
न्यून होय जो निज धरम पर ते अधिको मान।
मीच भली निज धर्म में पर धर्मं भय जान ॥३५॥

अर्जुन उवाच।

कहिये मेरे कौन के पुरुष करत हैं पाप।
जाके इच्छा नाहिंनै कर्म देत संताप ॥३६॥

श्रीभगवानुवाच।

यह जु काम अरु क्रुद्ध है रजगुणहीं ते होय।
क्योंहूं पूरन होइ नहिं पापी को अरि जोय ॥३७॥
अग्नि ढपै जो धूम से दर्पण मल के भाय।
गर्भ त्वचा सों ज्यों ढपै जग इतनें ही भाय ॥३८॥
ज्ञानी हू को ज्ञान इन वैरी राख्यो झांपि।
कथ दुःसह यह अग्नि है सकै न कोऊ ढांपि ॥३९॥
इन्द्री मन अरु बुद्धि है ये ही या के थान।
इन करि के नाशन जु है ज्ञानी हू को ज्ञान ॥४०॥
अर्जुन ताते प्रथम ही तू इन्द्रिन को रोंकि।
हरत ज्ञान विज्ञान जो इन पापिन को ठोंकि ॥४१॥
इन्द्री हैं सबते परे ताते पर मन सोय।
मनते परे जु बुद्धि है ताते आतम जोय ॥४२॥

आतम लखि बुधिते परै मन को कर वश माह।
कामरूप अरि दुसह को मारि डारि नरनाह॥४३॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगोनाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थ अध्याय।

श्रीभगवानुवाच।

यहै योग है मैं कह्यो पहिले रवि सों जाय।
तिनहूं तब मनु सों कह्यो मनु इक्ष्वाकु सिखाय॥१॥
परम्परा या योग को जानत हैं ऋषिराय।
बहुत दिना बीते गयो सोऊ योग नशाय॥२॥
वहै पुरानो योग है तोको दियो बताय।
याते तू मो मित्त है और भक्ति के भाय॥३॥

अर्जुन उवाच।

तुम तौ प्रकटे हौ अबहिं सूर पुरातन देव।
तुम कब तासों है कह्यो हौं जानौं यह भेव॥४॥

श्रीभगवानुवाच।

तेरे अरु मेरे जनम बीते हैं बहु बार।
तू तिनको जानत नहीं हौं जानत निरधार॥५॥

अज अविनाशी प्रकट हौं जगत ईश करतार ।
अपनी इच्छा लेत हौं शुद्ध तत्त्व अवतार ॥ ६ ॥
जब अर्जुन जग में घटत परम धर्म को भाय ।
बढ़त अधर्म जहां तहां तब मैं प्रकटत आय ॥ ७ ॥
साधुन की रक्षा करौं पापिन डारत मारि ।
थापत रीति सुधर्म की युग युग मांझ विचारि ॥ ८ ॥
जन्म कर्म मम दिव्य है तत्त्व लहै जो कोय ।
देह तजै मो को मिलै बहुरि न जन्मै सोय ॥ ९ ॥
राग द्वेष भय को तजै मो में राखै भाय ।
बहुत ज्ञान तप करि गये मोहीं मांझ समाय ॥ १० ॥
जो मोको जैसे भजै हौं तैसे फल देत ।
अर्जुन ते सब जगत में मेरो मत गहि लेत ॥ ११ ॥
कर्म सिद्धि की चाह करि पूजत देवन लोय ।
कर्मन की नरलोक में सिद्धि वेगते होय ॥ १२ ॥
चारों वरण जु मैं रचे करि गुण कर्म विभाग ।
हौं इनको करतार हूं नाहिं मोहूं अनुराग ॥ १३ ॥
कर्म न मोको लिप्त है मोहिं न फल की चाह ।
जैसे जो मोको भजै कर्म न बांधे ताह ॥ १४ ॥
जो चाहत हैं मुक्ति को करैं कर्म जो आय ।

तातें तू भी कर्म करु पहलेन को मत पाय ॥१५॥
कौन अकर्म सुकर्म को रहत पंडितो मोहि।
मुक्ति काज सोई करम कहे देत हौं तोहि ॥१६॥
जान्यो चाहिये कर्म को और विकर्म सुभाय।
पुनि अकर्म गति लीजिये गहन कर्म के दाय ॥१७॥
कर्मन मांझ अकर्म जे लखे अकर्मनि कर्म।
बुद्धिवन्त तिन सब किये मिटे मनन के मर्म ॥१८॥
जाके सब आरंभ निज विना कामना होत।
तासों पंडित कहत हैं निज हैं कर्म के गोत ॥१९॥
कर्म फलनि छाँडै सदा तृप्त करै नहिं आस।
ताको कर्मन करत हूं लगै न यम की फाँस ॥२०॥
जीति इन्द्रिय देह निज काम परिग्रह जाहि।
देह काज कर्मनि करै पाप न लागै ताहि ॥२१॥
यथालाभ संतोष जो दुख सुख गिनै न दोय।
सिद्धि असिद्धिहि एकसी कर्म न बंधन होय ॥२२॥
तजै सकल जो कामना ज्ञान लगावै चित्त।
यज्ञकाज कर्मनि करै सो नर बांधिय मित्त ॥२३॥
होम अग्नि हवि ब्रह्म है अपरै ब्रह्महिं जानि।
जाइ ब्रह्म में सो रहै कर्म समाधिहि ठानि ॥२४॥

देवन कोई भजन है करत पाप बहु भाइ ।
एक ब्रह्म में यजत है ज्ञान योग के दाइ ॥२५॥
एक जु होमत इन्द्रियन संयम अग्नि स्वरूप ।
विषयिन होमत एक है इन्द्री अगम अनूप ॥२६॥
जो सब इन्द्रिन के करम और कर्म सब पाइ ।
होमत संयम अग्नि में प्रकट करै चित लाइ ॥२७॥
एक यजत है देवे सो एक तपस्या योग ।
एक जु पढ़वे ही भजै एक ज्ञान सों लोग ॥२८॥
होम अपानहि प्राण में प्राण अपानहिं माहिं ।
प्राण अपानहिं रोकि कै रहत जु है नरनाहिं ॥२९॥
प्राणनहीं में प्राण को होमत तजि आहार ।
ये सब जानत यज्ञ को मेटत सकल विकार ॥३०॥
यज्ञ शेष अमृत भखत होम ब्रह्म में लीन ।
यहौ लोक बिन यज्ञ नहिं परलोकौ है छीन ॥३१॥
बहुत भांति वेदन कहे यज्ञ सबै ये मान ।
ते सब जानहु कर्मते लहौ मुक्ति सुख खान ॥३२॥
द्रव्य यज्ञते है बड़ो ज्ञान यज्ञ इहि दाय ।
जिते कर्म वेदन कहे ज्ञानहिं रहे समाय ॥३३॥

---

१ धन देना ।

कीजै बहुते नम्रता प्रश्न रु सेवा भांति।
तुहि ज्ञानी उपदेश है ज्ञान जिनै है शांति ॥३४॥
अर्जुन तू या के लहे नहिं लहि है फिर मोह।
सब जीवन को देखि है आप मांझ के सोह ॥३५॥
सब पापनतें जो बड़ो पापीहू ते होइ।
ज्ञानयान चढ़ि उतरि हैं पापसिंधु सम जोइ ॥३६॥
जैसे ज्वाल हुताश की डारै सब ही जारि।
ज्ञान अग्नि त्यों प्रबल है परति कर्म निर्वारि ॥३७॥
ज्ञान समानहुँ लोक में पावन नाहीं और।
योग साधना जे करैं लहैं ज्ञान को ठौर ॥३८॥
इंद्रीजित श्रद्धा सहित पावै ऐसो ज्ञान।
ता पाये तू तुरत ही लहै जु शांति सुजान ॥३९॥
जो मूरख श्रद्धा विना ताही को जु विनाश।
जाके यह संदेह है सो सुखलोक निराश ॥४०॥
मो को अरपै कर्म करि करि संदेहै दूर।
ज्ञानी बँधे न कर्म सो रहै सदा सुख पूर ॥४१॥
संदेह जु अज्ञान ते उपज्यो अर्जुन आहि।
ज्ञानखड्ग सब छीन करि योग करै किन ताहि ॥४२॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय ।

अर्जुन उवाच ।

कबहुँ कहत संन्यास को कबहुँ कर्म को योग ।
निश्चय करि एकै कहौ जामें सुख संयोग ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

कर्मयोग संन्यास अरु ये दोऊ शुभदैन ।
कर्म योग संन्यास में कर्मनि लहि चित चैन ॥ २ ॥
द्वेष तजै चाहै तजै सो संन्यासी जान ।
राग द्वेषते जे रहित ताहि छुट्यो तू मान ॥ ३ ॥
योग सांख्य को द्वै कहै मूरख पण्डित नाहि ।
दोउन में एकै भजै दोऊ फल हैं ताहि ॥ ४ ॥
ठौर जु लहिये सांख्यते सोई योगते होइ ।
सांख्य योग एकै गनै ताको ज्ञानी जोइ ॥ ५ ॥
लहै सन्यासहि दुःख सों बिन कर्माणि मित्त ।
योग युक्ति जे करत हैं लहैं मुक्ति निश्चित ॥ ६ ॥
इंद्रियजित हैं शुद्ध हिय योगयुक्त जो कोय ।
जीवन जानैं आतमा कर्म लिप्त नहिं होय ॥ ७ ॥
ज्ञानी कर्मनि करतहू लेइ किये नहिं मान ।

सूंघत देखत छुवत पुनि सुनत चलत हू जान ॥ ८ ॥
सोवत जागत चलत अरु बोलत डारेहु देत।
इन्द्रिय विषयनसों पगी जानत हैं यह हेत ॥ ९ ॥
कर्म करै तजि संग को सब को ब्रह्म जान।
ताको पाप न लगत है पद्मपत्र जल मान ॥१०॥
देही मन बुधि इन्द्रियन योगी है निहसंग।
कर्म करत अति चावसों चित्त शुद्ध के ढंग ॥११॥
ज्ञानी हू मुक्तिहि लहै कर्म करै फल छाँड़ि।
मूरख फल की आश करि बँधत कामना आँड़ि॥१२॥
मनकर करम न जे तजैं ज्ञानी तिन को मानि।
नवैं द्वार पुर में बसैं लेत सुखन की खानि ॥१३॥
ईश्वर नहिं करमन करत नहिं करमन करतार।
कर्मफलनिहूं नहिं करत प्रकृति करै विस्तार ॥१४॥
सुकृत न काहू को गहै और पाप नाहिं लेइ।
ढाप्यो ज्ञान अज्ञान ते मोह न प्रकटन होइ ॥१५॥
दूर कियो अज्ञान जिन हिये ज्ञान प्रकटाइ।
देखत ईश सुरूप ते ज्ञान सूर के दाइ ॥१६॥
जे मन को अरु बुद्धि को राखत ईश्वर माह।
जन्म मरण तिनको नहीं मुक्ति होइ नरनाह ॥१७॥

विद्यावंत पुनीत द्विज गो गज कूकर जान।
इनको ज्ञानी सब लखत भेद लेत नहिं मान ॥१८॥
समता जिनके जीय में तिन जीत्यो संसार।
बिना दोष मो ब्रह्मते ब्रह्मी ते निरधार ॥१९॥
सुख पाये हरषै न सो दुख पाये न रिसाय।
राखै थिर निज बुद्धि को ब्रह्महि रहै समाय ॥२०॥
बाहर के सुख को तजै हियसे हरष सुजान
ब्रह्म विषय चितको धरत है अक्षत सुख मान ॥२१॥
विषय जिते संसार के ते हैं दुख के मूल।
उपजत विनशत हैं तिन्हैं पण्डित गहैं न भूल ॥२२॥
काम क्रोध के वेग को जो सहि सकै सुभाइ।
सो योगी नित ही रहै थिर सुख में लिपटाइ ॥२३॥
जाके हिये प्रकाश है अंतर सुख आराम।
वह योगी परब्रह्म है लहै ब्रह्म को धाम ॥२४॥
जो ज्ञानी पापन तजत होत ब्रह्म में लीन।
भेद न तिनके जीय में रहत सबन सों दीन ॥२५॥
काम क्रोध जे रहित हैं वश कीन्हे जिन चित्त।
ज्ञानवन्त ते हैं सदा ब्रह्म चहूँ दिशि मित्त ॥२६॥
तजै विषय संसार के दृष्टि भौंह मधि राखि।

प्रान अपानहिं सम करै नासा मधि अभिलाखि॥२७॥
जीतै इन्द्रिय बुद्धि मन मुक्तिहि में मन देइ।
इच्छा भय क्रोधहि तजै मुक्ति पदारथ लेइ॥२८॥
तप यज्ञन को भोगता सब लोकनि को ईश।
शांति लहै यों जानिके मोको प्रभु जगदीश॥२९॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगोनाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठ अध्याय।

श्रीभगवानुवाच।

कर्मफलन चाहै नहीं करै कर्म निष्काम।
योगी संन्यासी वही पावे सुख को धाम॥ १॥
जाको संन्यासी कहै सो तू योगी जानि।
बिन संन्यासहि योग नाहिं यहै साँच तू मानि॥ २॥
योगहि कर्मनि लेत है ज्ञानी चित्त विचार।
योग लहै शांतिहि गहै विषय-इन्द्रियन मार॥ ३॥
विषयन सों अरु कर्म सों होइ प्रीति जब दूरि।
सब संकल्पन को तजै योग रहै तब पूरि॥ ४॥

निज आतम को उद्धरत अधोगमन न करेइ।
आतमहीं रिपु आप को आतमहीं सुख देइ ॥५॥
आपहिं जान्यो आतमा सोई बंधु सुपाहि।
तिन जीत्यो नाहीं जनै अरि ह्वै बरतत ताहि ॥६॥
जिन जीत्यो है आतमा शांति लही बहु ज्ञान।
शीत उष्ण सुख दुख जु सम अरु अपमान समान॥७॥
जानत ज्ञान विज्ञान जो अरु इन्द्रियजित होय।
सोनो पाहन एक सम गनै सुयोगी कोय ॥८॥
मित्र उदासी शत्रु पुनि अरु निज बन्धु समान।
साधू पापी चित्त में गनै एक उनमान ॥९॥
बैठि इकौसे इक चितो योगी साधै योग।
एकाकी चाहै न कछु जोरे नहिं सुख भोग ॥१०॥
ठौर पुनीत निहारि कै करि आसन विस्तार।
नहिं ऊंचो नीचो नहीं पद कुश अजन विथार॥११॥
करि बैठै मन को जु थिर सब इन्द्रिन को जीति।
करिकै आतम शुद्धि को योग करै या रीति ॥१२॥
काया शिर अरु ग्रीव को राखै एक समान।
नासा अग्रहि दीठि धरि देखै नाहिं दिशि आन ॥१३॥
शान्ति गहै भय को तजै ब्रह्मचर्य व्रत लेय।

मो में राखै रोकि मन लहै योग के भेय ॥१४॥
यहि विधि करै जु योग को निज मनको थिर राखि ।
शान्ति लहै मोको मिलै रहै अमिय रस चाखि ॥१५॥
योग लहै नहिं बहु भखे विन पायेहू मित्त ।
सोवतहू सोवै नहीं अस जग जागहु नित्त ॥१६॥
युक्त अहार विहार जो कर्म युक्ति पुनि होय ।
जागत सोवत जो युगत सो डारत दुख खोय ॥१७॥
जब निजचित को रोकि के राखै आतम माहिं ।
तजै सबै जो कामना सो योगी नर नाहिं ॥१८॥
जैसे दीप समीर विन रहै ज्योति ठहराय ।
योगी निश्चल चित्त को उपमा है या भाय ॥१९॥
योगी सेवत योग को चित्त जहाँ ठहराय ।
निरखत आतम को तहाँ रहत सदा सुख पाय ॥२०॥
जो सुख इन्द्रियते परे बहुते बुधि गहि लेत ।
वा सुख को जानै तबै ता पाछे है नेत ॥२१॥
जा पाये लाभ न अधिक और हानि नर मित्त ।
थिरता कहि डोलै नहीं बहु दुख पाये नित्त ॥२२॥
दुखहू के जो संग को मानै लेत वियोग ।
निश्चय करि जो कहि करै ताको कहते योग ॥२३॥

धीरज धरि अरु अवधिकर हरै हरै सब त्याग।
कछु वै करै न कामना आतम सों अनुराग ॥२४॥
मन चंचल जित तित चलै ताको राखै रोंकि।
कै संयम निज आतमा सजै जु ताको ठोंकि ॥२५॥
जाके मन में शांति है पाय रहत जो कोइ।
मगन जु ब्रह्म अनंद में ता योगी को जोइ ॥२६॥
जो योगी इहि विधि करै योग पाप को त्यागि।
सहजै ब्रह्महिके सुखहिं लहै रहत अनुरागि ॥२७॥
मोहिं लखै सब ठौर जो अरु सबको म्वाहिं माहि।
मोको देखत सो सदा हौं हूँ देखत ताहि ॥२८॥
व्यापक हौं सब जगत में मोको सेवत कोइ।
कैसे हूं कितहौं रहौं ताको मो में जोइ ॥२९॥
सब प्राणिन में स्थित मुझे भजै एक मन होहिं।
सर्व विषे अस्थिर जु हौं यह लखि भजै जु मोहिं॥३०॥
सबको देखै आप सम सुख दुख एकै भाइ।
सो योगी सबते बडो मो में रहै समाइ॥३१॥

अर्जुन उवाच।

योग कह्यो तुम कृष्णजू मोको एक समान।
रहै न मो चित चलतही जो तुम कियो बखान॥३२॥

मन है चंचल कृष्ण जू बहु क्षोभक दृढ़ जान।
ताको रोकत पवन सम है अति कठिन सुजान ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच।

अर्जुन तू साँची कही मन चंचल न गहाय।
योग किये वैराग सों नीके पकस्यो जाय ॥२४॥
जिन पकरो नाहिं चित्त निज तापै योग न होइ।
जिन अपनो मन वश कियो रहत यतन सों सोइ ॥२५॥

अर्जुन उवाच।

यजन और श्रद्धा सहित योग भ्रष्टता पाइ।
लहै न सिद्धि संयोग की कौन गतिहि को जाइ ॥२६॥
किधौं दुहुन के भ्रष्टते बादर लों विनशाइ।
ताको कछू न आसरो रह्यो मूढ़ के भाइ ॥२७॥
मेरे या संदेह को दूरि करौ जगदीश।
काटनहार सँदेह यह तुम बिन और न ईश ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच।

अर्जुन दोऊ लोक में ताको होइ न नाश।
भले कर्म जे करत हैं तिनको नाहिं अववास ॥२९॥
पुण्यवन्त के लोक लहि रहै बहुत दिन जाइ।
योग भ्रष्ट धनवंत अरु शुचि घर जन्मै आइ ॥४०॥

शुद्धिवंत योगी कुलनि आइ लेइ अवतार।
जन्म लहत ऐसे घरन दुर्लभ है निरधार ॥४१॥
तिनहूं पहली देह को लहौं बुद्धि संयोग।
यतन करत हैं सिद्धि को बहु विधि साधैं योग ॥४२॥
मो तो अपने वश नहीं है पहिले अभ्यास।
ताते उपजै योग जो ब्रह्म शब्द में वास ॥४३॥
योगी जो यतनहिं करै सब अघ डारे धोय।
बहुत यतन सिद्धै लहै ताहि परम गति होय ॥४४॥
तपसीते योगी अधिक ज्ञानीहूं ते जानि।
कर्मनिहूते है अधिक अर्जुन योगनि ठानि ॥४५॥
जो योगी राखै मनहिं सो मैं निहचल भाय।
श्रद्धायुत मो को भजै सो सबते अधिकाय ॥४६॥
कर्मज्ञान व्रतयोग ते भक्ति सबनि शिरमौर।
तिन अर्जुन मैं वश कियो मो बिन छिन नहिं और ॥४७॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे आत्मसंयमयोगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय ।

श्रीभगवानुवाच ।

मेरो ही करि आसरो मोहीं में चित राखि ।
जानहिं निस्सन्देह यह मोहिं ते सब सुनि भाखि ॥ १ ॥
ज्ञानो और विज्ञानहौं तोसों कहौं बखान ।
जाके जाने जानबो कछु न रहत है जान ॥ २ ॥
यतन करत है सिद्धि को एक हजारन माहिं ।
तिनहूं में कोऊ लखै बहुत लखै मुहिं नाहिं ॥ ३ ॥
भूमि नीर पावक पवन अंबर मन बुधि मान ।
अहंकार है आठवों माया भेद न जान ॥ ४ ॥
अपरा इनते और यह परा प्रकृति सम जान ।
जीव तत्त्व जिहि जग धरेउ यह अर्जुन मन मान ॥ ५ ॥
माया मेरी एक यह जिन जु गह्यो संसार ।
साँची मन में मानि ले जीवरूप निज धार ॥ ६ ॥
माया ते उत्पन्न है सबै जीव हो दाय ।
हौं उपजाऊं सब जगत नाश करौं जु सुभाय ॥ ७ ॥
अर्जुन मोते जो परे और कछू जानि जान ।
ये सब मो में यों रहें ज्यों सूतहिं मणि मान ॥ ८ ॥

रस जल में शशि सूर में किरन सु मोको मानि।
श्रुति में प्रणव मनुष्य में पौरुष सम धुनि जानि॥ ९॥
पुनि सुगन्ध हौं भूमि में हौं पावक में तेजु।
जीवन हूं को जीव हूं तपसिन तप लखिलेजु॥१०॥
सव जीवन को वीज हूं मोको जानहुँ लेहु।
बुद्धिवन्त में बुद्धि हौं सव तेजन को गेहु॥११॥
वल वलवन्तन को जु हौं काम राग तिन नाहिं।
कामरूप हौं हौं जु हौं धर्म सबै मो माहिं॥१२॥
राजस तामस सत्त्व को जे हैं सिगरे भाइ।
यह सव मो में वसत हैं मोहिं न इनसों चाइ॥१३॥
तीनों गुण के भावते जिन मोह्यो संसार।
मोको कोई नहिं लखत अव्यय इनते पार॥१४॥
मेरी माया गुणमयी दुस्तर तरी न जाइ।
पावै जो कोउ मो शरण सो जु तरै सुख भाइ॥१५॥
पापी मूरख तो वड़े ते नहिं पावत मोहि।
ज्ञान जु मायाते हस्यो असुरगणनि में पोहि॥१६॥
पुण्यवन्त जे चारि विधि मोहिं भजैं चित ऐन।
ज्ञानी रोगी कामयुत विज्ञानी सुन बैन॥१७॥
ज्ञानी जो भक्तिहि करै सो सवते अधिकाइ।

ज्ञानी को वल्लभ जु है ज्ञानी मोहिं सोहाइ ॥१८॥
मेरे मत ये सब बड़े ज्ञानी मोको जानि।
उत्तम गति पाई जु तिन फलहि लेत नाहिं मानि ॥१९॥
बहु जन्मनि मो को लहै ज्ञानवन्त रे मित्त।
वासुदेव सब में लखै सो दुर्लभ है नित्त ॥२०॥
नहीं ज्ञान जिनके हिये सेवत और देव।
अपने काम स्वभाव सों बँध्यो जु ताही भेव ॥२१॥
श्रद्धायुत ते पूजहीं जा देवन चितचाइ।
ताकी ताही मांझ हौं श्रद्धा देहुँ बढ़ाइ ॥२२॥
सो वाहीं श्रद्धा सहित पूजत वाही देव।
देत जु हौं हीं कामना वह जानत नहिं भेव ॥२३॥
फल थोरो पावत जु वै विना ज्ञान है मूढ़।
देवभक्ति देवन मिलै मेरो सो को गूढ़ ॥२४॥
जिनकी थोरी बुद्धि है जानत प्रकट न मोहि।
अविनाशी उत्तम जु हौं सबते न्यारो जोहि ॥२५॥
ढप्यो जु माया योग हौं काहू के न प्रकास।
मूरख मोहिं न जानहीं अजर अमर सुखवास ॥२६॥
वे जीते जानत नहीं वर्तमानहू मित्त।
होनहार सब को लखै मोहिं लखै नहिं चित्त ॥२७॥

राग द्वेष अज्ञान से सबै जु मोहित होत।
मन जु लेत है आप को हम हैं सुखनि उदोत ॥२८॥
पुण्य करैं जे जगत में दूरि करैं निज पाप।
तेई छूटत मोहतें मोको पावत आप ॥२९॥
जरा मरण की हानि को जो कोउ करत उपाय।
जानत ते अध्यातमहिं ब्रह्म कर्म के भाय ॥३०॥
अधिदैवत अधिभूत सो मो सों सेवत नित्त।
अन्त समय भूलै नहीं योगी मेरो चित्त ॥३१॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय।

—:o:—

अर्जुन उवाच।

अध्यातम तो ब्रह्म को कर्म कहा जगदीश।
अधिदैवत अधिभूत तुम जानत बिस्वेबीस ॥ १ ॥
अधियज्ञहि कासों कहत या देही में कौन।
कैसे तुम को जानहीं प्राण करत जब गौन ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षर सों ब्रह्महि कहत अध्यातम जु सुभाइ ।
जे उपजावत जगत को सोई कर्म सुदाइ ॥ ३ ॥
देह जु है अधिभूत यह अधिदैवत है जीव ।
सब देहन की देह में हौं अधियज्ञ सपीव ॥ ४ ॥
अंत समय मोहिं शुद्ध करि तन त्यागै जो कोय ।
सोवत ही मोको मिलै तहां न संशय होय ॥ ५ ॥
प्राण तबै देहै तजै सुमिरै जो जो काज ।
पारथ शोचत भाव जे सो सो पावत साज ॥ ६ ॥
मेरो सुमिरन नित्य कर युद्ध करै किन मित्त ।
अर्पै मो में बुद्धि मन हौं आऊं तव चित्त ॥ ७ ॥
योग और अभ्यास में जा को चित थिर होय ।
मो चिन्ता राखै सदा पुरुषै पावै सोय ॥ ८ ॥
सब करता सूक्षम जु अति कवि सु पुरातन मान ।
रवि समान सबतो परैं सुमिरन ताको ज्ञान ॥ ९ ॥
मरण समय मन थिर करै भक्तियोग बल पाय ।
भृकुटि मध्य प्राणै धरै परम पुरुष में जाय ॥१०॥
अक्षर जासों कहत हैं वीतराग जहँ जात ।
ब्रह्मचर्य कौने करै ता पद की यह बात ॥११॥

सब द्वारन को वश करै मन रोकै हियमाहि।
प्राणहि राखै शीश में रहै धारणा गाहि ॥१२॥
प्रणवाक्षर को जप करै सुमिरै मो को नित्त।
यहि विधि जो देहै तजै लहै परम गति मित्त ॥१३॥
स्थिर चित ह्वै मोको भजै सदा निरंतर होइ।
ता योगी को सुलभ है और लहै नहिं कोइ ॥१४॥
महापुरुष सिद्धिहि लहै मो को पाय प्रवीन।
दुखको घर जो जन्म है ता में होत न दीन ॥१५॥
ब्रह्मलोकलौं लोक जे तिनते फिर न जु लोइ।
अर्जुन मो को पाइ कै जन्म लहै नहिं कोइ ॥१६॥
सहस युगनि के अन्त में ब्रह्मा को दिन जानि।
रातहु इतनी होतिहै ज्ञानी कहै बखानि ॥१७॥
ब्रह्मा के दिन होत ही प्रकटन यह संसार।
निशि के आये जात हैं माया में तावार ॥१८॥
बार वार उपजत सबै जीवन सब रे मित्त।
ब्रह्मा के दिन रैनि में वहे जात हैं नित्त ॥१९॥
ब्रह्म जु माया ते परे इन्द्रिन गहो न जात।
सब जीवन के नशतहूं सो कबहूं न नशात ॥२०॥
सोई अक्षर परम गति ताहि न देखै कोइ।

फिरै न ताको पाइकै परम धाम मम जोइ ॥२१॥
भक्ति किये ते पाइहैं परम पुरुष को जान ।
जामें सगरे जीव ये जग विस्तारो आन ॥२२॥
फिर आवत जा काल में नहिं आवत ताकाल ।
अर्जुन तोसों कहत हौं सुन यह सीख विशाल ॥२३॥
अग्नि ज्योति दिन शुक्लपक्ष उतरायण के मास ।
जात जु ज्ञानी या समय लहै ब्रह्म में वास ॥२४॥
धूम निशा दक्षिण अयन कृष्णपक्ष जो होय ।
शशिमंडल योगी लहै फिर आवत है सोय ॥२५॥
शुक्ल कृष्ण ये गति कही ते संसारहि होत ।
फिर आवत है एक गति एक लहत है जोत ॥२६॥
जो जानै दोऊ गतिनि योगी मोह न होय ।
योगी है अर्जुन मुहूं सब कालनि में जोय ॥२७॥
वेद यज्ञ तप दान को फल जु होत है मित्त ।
योगी ता फल को लहै सदा रहै निहचित्त ॥२८॥
सब फलको फल सारफल योगी हरिसों योग ।
भक्ति करै मोको मिलै फल त्यागै करि भोग ॥२९॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय

श्रीभगवानुवाच ।

अर्जुन तोसों कहत हौं एक गुप्त यह बात ।
समुझै ज्ञान विज्ञान को लहै मुक्ति की घात ॥ १ ॥
उत्तम विद्याराज है अति पवित्र तू जान ।
फल ताको प्रत्यक्ष है करि वोहू सुखमान ॥ २ ॥
करिबे को या धर्म के जा के श्रद्धा नाहिं ।
ते मोको पावत नहीं डोलत हैं भव माहिं ॥ ३ ॥
विस्तार्‌यो जब जगत में मोहिं न देखै कोइ ।
सबै जीव मो में वसैं मोंहिं न ता में जोइ ॥ ४ ॥
मो में कोऊ नाहिं बसै यह ईश्वरता देखि ।
उपजावत पाई मत जु नाहिं तिनमें अवरेखि ॥ ५ ॥
जैसे पवन अकाश में फिरत रहै सब बार ।
त्यों मो में यह जीव सब फिरत ज्ञान निरधार ॥ ६ ॥
मेरी माया में रहैं प्रलय भये सब जन्त ।
कल्प आदि सिरज्यों तिन्हैं मो में तिनको तन्त ॥ ७ ॥
अपनी माया लेहु हौं सिरजित वारंवार ।
मायाही के वश पर्‌यो रहै सदा संसार ॥ ८ ॥
अर्जुन मोको कर्म यह कबहूं बाँधत नाहिं ।

सद्य उदासी रहत हौं आसक्त न तिन माहिं ॥ ९ ॥
हौं प्रेरत मय ही जवै उपजत सब संसार।
पारथ याही हेत ते फिरत सु बारंबार ॥१०॥
मोको मानस जानि कै आदर करै न कोइ।
मूरख यह जानत नहीं इहै जु ईश्वर होइ ॥११॥
नर तनु आश्रित जानि मोहिं करत अवज्ञा मूढ़।
जानें नहीं प्रभाव मम सबको ईश्वर गूढ़ ॥१२॥
उनकी आशा सुफल नाहिं ज्ञानकर्मता धाइ।
प्रकृति आसुरी राक्षसी ता में बूड़े धाइ ॥१३॥
देव प्रकृति में जो मिलैं काम क्रोध को त्यागि।
ते मो को पावत सबै रहत जु है अनुरागि ॥१४॥
मिलजु महात्मा सुरप्रकृति पार्थ जानि मोहिं धन्य।
अव्यय सब भूतादि नित भजत जु मनसानन्य ॥१५॥
नित कीर्त्तन मेरो करै यतनन मो व्रत राखि।
भक्ति सहित मो को नवत मेरे ही गुण भाखि ॥१६॥
ज्ञानयज्ञ कोऊ भजत मो को सेवत मीत।
कोऊ मानत एक करि कोऊ बहुत पुनीत ॥१७॥
हौं हीं क्रतु अरु यज्ञ हौं स्वधा औषधी जानि।
हौं पावक अरु होम हौं मंतर मोको मानि ॥१८॥

माता पिता जु जगत को हौं हीं हौं करतार।
ऋग्यजुसाम पवित्र हौं और वेद ॐकार ॥१९॥
गति निवास भर्त्ता शरन साक्षी प्रभु अरु बंध।
उत्पति प्रलयस्थान निधि अव्यय बीज अबंध ॥२०॥
तपत गहत त्यागत जु हौं बरषत मोहीं जान।
अमृत कारन करन हौं हौं हीं अर्जुन मान ॥२१॥
यज्ञ करत पापन दहन चाहत स्वर्गहि वास।
इन्द्रलोक लहि भोगवें दिव्य भोग सविलास ॥२२॥
फिर आवत भूलोक में क्षीण पुण्य जब होय।
आवागमन ते करत हैं कामवंत जे लोय ॥२३॥
भक्ति करै जु अनन्य ह्वै मोहीं में चित राखि।
योगक्षेम तिनको करै निज जन को अभिलाखि॥२४॥
और देव के भक्त जे सेवत श्रद्धावन्त।
विधि छोड़ै मोको भजत लहत न मेरो तन्त ॥२५॥
सब यज्ञन को भोगता और सबन को ईश।
जे मम सत्य न जानहीं डारत तिनको धीश ॥२६॥
देवभक्ति देवन लहैं पितृपूजि पितृथान।
भूत भजैं भूतादि लह मो पूजैं भगवान ॥२७॥
पात फूल फल नीर को जो अर्पै करि प्रीति।

लेउँ दियो हौं भक्त को देखि प्रीति की रीति ॥२८॥
जो कछु करत जो अशन है जो होमत जो देत।
अर्जुन जो तू तप करै मोहिं देइ करि हेत ॥२९॥
भले बुरे जे कर्म हैं तिनते छूटहि मित्त।
भक्तियोग संन्यास करि मोहिं लहो इन चित्त ॥३०॥
हौं सब ठौर समान हौं मेरे प्रीति न द्रोह।
मोको सेवत भक्त जे तिनसों मो सों मोह ॥३१॥
दुराचार मो को भजै है अनन्य के भाय।
ताको तुम साधौ गनो शुभ निश्चय के दाय ॥३२॥
वेग होइ धरमातमा शांति लहै बहु भाइ।
अर्जुन निश्चय जान तू नहिं मो भक्ति नशाइ ॥३३॥
अर्जुन सेवत मोहिं जे पापयोनिहू होय।
त्रिया शूद्र अरु वैश्य पुनि लहै परम गति सोय॥३४॥
द्विज पुनीत अरु भक्तिवर राजा रिपु वह भाय।
सुख अनंत या लोक को मोहिं भजै चितलाय ॥३५॥
मोको भज तू नम्र ह्वै मोहीं में मन राखि।
यही युक्ति तू मोहिं मिल प्रेमनि सों अभिलाखि ॥३६॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगोनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय।

श्रीभगवानुवाच।

दुरी बात तोसों कहत सुन अर्जुन चितलाय।
ह्वै प्रसन्न तोसों कहौं तेरे हित के भाय॥ १॥
देवो ऋषि जानत नहीं मो उत्पातिहू मीत।
देव ऋषिन की आदि हौं नितही रहत पुनीत॥ २॥
अजअनादि जगदीश नित मोको लखत जु कोइ।
सब में ज्ञानी वह बड़ो पापनि डारत धोइ॥ ३॥
बुद्धि ज्ञान शम दम क्षमा अव्याकुलता होय।
सुख भव दुःख अभाव भव और अभयहू जोय॥ ४॥
तोष अहिंसा दान तप सम यश अयशो जान।
जीवन को सब भाव यह मोते होत सु मान॥ ५॥
सातों ऋषि अरु चारि मुनि मो मनते जु उदोत।
सब लोकनि में हौं भरे ते इनहीं के गोत॥ ६॥
मेरे योग विभूति को तत्त्व जान जो लेत।
निहचल जा गहि सो लहै रहत जु याही हेत॥ ७॥
जग को कर्त्ता ईश हौं मोहीं ते सब होइ।
ज्ञानवंत यह जानिकै मोहीं सेवत सोइ॥ ८॥

प्राण चित्त मो में धरै बोध परस्पर देत।
मेरे चरितनि कहत नित मानि तोष सुख लेत॥ ९॥
सेवत मो को ते सदा भक्तियोग के भाइ।
भली बुद्धि वे लहत हैं रहत जु मो में आइ॥१०॥
सो अज्ञानहि दूर करि दयावंत वे होत।
करत जु तिनके हिये में ज्ञानदीप उद्योत॥११॥

अर्जुन उवाच।

परब्रह्म पवित्र तुम परमानंद को धाम।
अविनाशी अज पुरुष हो आदि देव तव नाम॥१२॥
सब ऋषि इहिविधि कहत हैं नारद देवल जान।
व्यासस्तुति तुम हूं कहत ताते लीने मान॥१३॥
जो कछु तुम मोसों कहत मानत हौं सत भाइ।
दानव देव न जानहीं तुम प्रकटन के दाइ॥१४॥
आपुन पौ आपुन लखौ तुम पुरुषोत्तम देव।
जीवन उपजावत हरत पालत देवनिदेव॥१५॥
निज विभूति मोसों कहो दिव्य जु चितको चाइ।
जो विभूति श्रीकृष्ण जू रही जगत में छाइ॥१६॥
ध्यान तिहारो करत प्रभु जानै कैसे तोहिं।
कौन पदारथ में लखौं सो समझावो मोहिं॥१७॥

योग विभूति सो आपनी कहिये मोसों देव ।
मोको तृप्ति न होत है सुनत अमिय रस भेव ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच ।

अर्जुन तोसों कहत हौं निज विभूति विस्तार ।
मुख जेती तेई कहत एकै हगन निहार ॥१९॥
सब जीवन के हिये में मोहिं आतमा जानि ।
आदि अन्त अरु मध्य में मोहीं सब में मानि ॥२०॥
आदित्यन में विष्णु हौं ज्योतिन में रवि देखि ।
वायुन मांझ मरीचि हौं नक्षत्रन शशि लेखि ॥२१॥
सामवेद हौं वेद में इन्द्र अमरगण मांह ।
सर्व जीव में चेतना मन इन्द्रिन को नाह ॥२२॥
रुद्रन में शंकर जु हौं यक्षन मांझ धनेश ।
पावक हौं हीं सवन में शैल सुमेरु सुदेश ॥२३॥
देव पुरोहित मुख्य जो मोहिं बृहस्पति मानि ।
षटमुख सेनापतिन में सर में सागर जानि ॥२४॥
हो जु महर्षिन माहिं भृगु वाणी में ॐकार ।
यज्ञन में जपयज्ञ हौं थावर हिम आधार ॥२५॥
वृक्षन में पीपर जु हौं ऋषिन में नारद देव ।
गंधर्वन में चित्ररथ सिद्ध कपिल मो भेव ॥२६॥

अश्वन में उच्चैःश्रवा ऐरावत गज मांह।
पोषत सबके काम हों नर में हौं नरनाह ॥२७॥
हथियारन में वज्र हौं कामधेनु हौं गाइ।
काम प्रजाकर माह हौं वासुकि सर्पन राइ ॥२८॥
नागन मांझ अनंत हौं वरुण जु हौं जलजंत।
पितरन में हौं अर्यमा यम हौं संयमवंत ॥२९॥
दैत्यन में प्रहलाद हौं प्रेरनहारो काल।
सिंह जु हौं सब मृगन में पक्षिन में रिपुव्याल ॥३०॥
उत्तालन में पवन हौं शस्त्रधरन में राम।
जलजंतुन में मगर हौं नदियन गंगा नाम ॥३१॥
अध्यातम विद्यान में वाद विवादन माह।
आदि अंत में मध्य हौं सबै सृष्टि को नाह ॥३२॥
अक्षर मांझ अकार हौं द्वन्द्व समासन जानि।
हौं हीं अक्षय काल हौं धाता मो को मानि ॥३३॥
हौं सब को संहरत हौं और उपावन हार।
श्री कीरति सरसतु क्षमा होहिं बुद्धि संभार ॥३४॥
महासाम हौं साम में गायत्री मधि छंद।
मार्गशीर्ष हौं मास में ऋतु वसंत सुखकन्द ॥३५॥
जूआ हौं सब छलन में तेजस्विन में तेजु।

जय अरु उद्यम सत्त्व हौं सत सतवंतन के जु ॥३६॥
यदुकुल माहीं कृष्ण हौं अर्जुन पांडव माहि।
मुनिन मांझ हौं व्यासमुनि गनौ शुक्र कविताहि॥३७॥
दंडवंत में दंड हौं जीतवंत में जीत।
ज्ञानन हूं में ज्ञान शुभ मौन दुरावन रीत ॥३८॥
औषध में यव अन्न में कञ्चन धातुन माह।
सर्व तृणन में दर्भ हौं यों समझो नरनाह ॥३९॥
सब जीवन को जीव हौं अर्जुन मो को जानि।
थिर चर या संसार में मो विन कछू न मान ॥४०॥
मेरी दिव्य विभूति को अंत न जानो जाय।
यह तो थोरो सो कह्यो मैं विभूति को भाय ॥४१॥
जो कछु या संसार में कतहूं गुण अधिकाय।
सो सब मेरो तेज है दीनो तोहिं बताय ॥४२॥
बहुत कहा तोसों कहौं अर्जुन बात बनाय।
सब जग अपने अंग सों मैं राख्यौं ठहराय ॥४३॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-
संवादे विभूतियोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय ।

—:०:—

अर्जुन उवाच ।

मोहीं पर कीन्हीं दया अध्यातम प्रकटाय ।
बचन तुम्हारो सुनतही मोह जु गयो नशाय ॥ १ ॥
जीवन की उतपति सुनी और प्रलय की रीति ।
कही जु तुम विस्तार सों आतम की शुभ नीति ॥ २ ॥
यों हीं है जो तुम कहत हरि जू अपनो भेव ।
देखो चाहत हों अबै रूप तुम्हारो देव ॥ ३ ॥
देखन योगो मोहिं जो जानत हो यदुराय ।
अविनाशी निज रूप तुम दीजै मोहिं दिखाय ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अर्जुन अब तू देखि ले सत सहस्र मो रूप ।
बहुत भांति है दिव्य जो नाना बरण अनूप ॥ ५ ॥
देखि रुद्र आदित्य वसु अश्विनिसुत मो माहिं ।
औरो अचरज रूप जे पहिले देखे नाहिं ॥ ६ ॥
एक ठौर मो देह में थिर चर रहै समाइ ।
देखो चाहत जो कछू सोई देउँ दिखाइ ॥ ७ ॥
इन नयनन नहिं देखिहौ देउँ दिव्य दृग तोहिं ।

ईश्वर योग सयुक्त तू जैसे देखै मोहि ॥ ८ ॥

संजय उवाच।

योगेश्वर श्रीकृष्ण जू कहि वचनन बहु भाइ।
परम रूप ईश्वर जु हौ सो दीनों प्रकटाइ ॥ ९ ॥
बहु आनन लोचन बहुत देखे अचरज होत।
शोभित नाना भूषणनि शशि अनेक उद्योत ॥ १० ॥
दिव्य हार दिव्यै वसन दिव्य सुगंध लगाइ।
आनरूप तुम होतते शोभित नाना भाइ ॥ ११ ॥
सहस्र किरण आकाश में पूरि रह्यो सो ज्योति।
दीपनता प्रभु की लहै तऊ न समता होति ॥ १२ ॥
भिन्न भेद है जगत में देखै सब इक ठौर।
देव देव की देह में अर्जुन देखै और ॥ १३ ॥
ताको तब अचरज भयो रोम हर्ष के दाइ।
ता देवहि परणाम करि बोल्यो चित के चाइ ॥ १४ ॥

अर्जुन उवाच।

देखत हौं तुम देह में सब सुर थिर चर सिद्ध।
कमलासन शुभ ईश पुनि सर्वनाग शुभवृद्ध ॥ १५ ॥
बहुत बाहु उदरा बहुत मैं देखे बहु सीश।
अंत आदि मधि यह नहीं ऐसे तुम जगदीश ॥ १६ ॥

मुकुट शीश कर चक्र गद रूप राशि भगवान ।
दृगन चौंध चितवन लगे हौ रवि अनल समान ॥१७॥
अक्षर हौ तुम ही परम हो सब जगत निधान ।
अविनाशी रक्षक सबनि उत्तम हो उनमान ॥१८॥
आदि अंत मधि रहित तुम रवि शशि हैं तुव नैन ।
तेरे मुख दीपति आगिनि सब ही को तू ऐन ॥१९॥
गगन भूमि मधि सर्व दिश व्यापे तुम इक है जु ।
अद्भुत रूप जु उग्र लखि प्रविशत लोक सबै जु ॥२०॥
पैठत तो में देव सब अस्तुति कर भय मानि ।
ऋषि अरु सिद्ध महातमा नवत सु तो को जानि ॥२१॥
रुद्र रूप रवि विश्व कहु अश्विनिसुत अरु वायु ।
सिद्ध यक्ष गंधर्व सुर देखत अचरज पायु ॥२२॥
रूप बड़ो बहु मुख नयन भुज पद बहु उदरौ जु ।
देखि भयानक दाढ़ बहु थिथकत लोक रु हौं जु ॥२३॥
पायँ पुहुमि आकाश शिर दृग मुख दीरघ बाय ।
ऐसे तुमको देखि कै धीरज गयो पराय ॥२४॥
काल अग्नि सम दाढ़ तुम ता देखत भयभीत ।
दिश भूली सुखहूं गयो अब कीजै बहु प्रीत ॥२५॥
पूत सबै धृतराष्ट्र के सब नृपतिन के संग ।

कर्ण द्रोण भीषम जिते योधा हैं तो अंग ॥२६॥
धेरे तेरे वदन में सबै परत हैं जाय।
कोऊ दाढ़न तर दले कोउ रहे लपटाय ॥२७॥
ज्यों सरिता बरषा ऋतै परत सिंधु में जाइ।
त्यों नृप तेरे वदन में सबै परत हैं धाइ ॥२८॥
ज्यों पतंग पर दीप में लहै अपनपो नाश।
तैसे सब नृप रहत हैं तेरे मुख के पाश ॥२९॥
लीलत हौ तिनको जु ले रसना सों लपटाय।
कान्ति रावरी जगत को देत ताप बहु भाय ॥३०॥
उग्ररूप तुम कौन हौ मो सों कहिये देव।
जानो चाहत हौं अबै तुम बातन को भेव ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच।

कालरूप है हौं बढ़्यो सब को मारणहार।
तो बिन सब योधान को भखि जै हौं निरधार ॥३२॥
ताते उठि रण जीति अब वल कीरति अरु राज।
मैं हनि राखे हैं नृपति ये सब तेरे काज ॥३३॥
भीषम द्रोण जयद्रथ कर्ण आदि जे और।
भय तजि अर्जुन युद्ध कर अरिन मारि या ठौर ॥३४॥

संजय उवाच।

वचन सुने श्रीकृष्ण के कांपी अर्जुन देह।
पुनिपुनि प्रभु पग लागि सु डरि बोल्लो वचन सु येह॥३५॥

अर्जुन उवाच।

सब जग को यहि जगत में तुम से है अनुराग।
सिद्ध नवत तोको सदा राक्षस जात जु भाग॥३६॥
क्यों न नवों तुम को जु हौं ब्रह्मा के करतार।
जगत ईश अक्षर अनँत सब काहू ते पार॥३७॥
पुरुष पुरातन आदि हो तुम हीं जगत निधान।
तुम यह सब जग विस्तर्यो जानत तुमहीं ज्ञान॥३८॥
वायु प्रजापति अग्नि यम वरुण चंद्र तव रूप।
वारंवार सहस्र शत प्रणमित तुम्हैं अनूप॥३९॥
आगे ते होते नवत पाछे हूं जु अनन्त।
सर्व दिशान तुमको नवत अमित प्रबल भगवन्त॥४०॥
मित्र जानि तोसों कही सो क्षमिये हो देव।
जानों कहा जु बापुरो तुम महिमा को भेव॥४१॥
भोजन समय विहार में किये अनादर भाइ।
ते जु क्षमा सब कीजिये प्रभुजी के सब राइ॥४२॥
पिता जु तुम संसार के तुमहीं गुरु हो ईश।

तुम पटतर कोउ नाहिंनै कौन करै तो रीश ॥४३॥
तुमहिं दराडवत प्रसन है क्षमहु दोष जो मोहि।
ज्यों पितु सुतको पति त्रियहि मित्र मित्र को जोहि॥४४॥
रूप लख्यो यह रावरो मोहिं हर्ष भय होय।
पहिलो रूप दिखाइये हौं जीवत जेहि जोय ॥४५॥
मुकुट विराजत शीश पर शंख चक्र गद हाथ।
इहि विधि मोहिं दिखाइये प्रभु हो तुम जगनाथ ॥४६॥
चारि भुजा धरि प्रकटहु मो को दरशन देहु।
तुव मूरति जु अनंत है मो को जासों नेहु ॥४७॥

श्रीभगवानुवाच।

तोहिं दिखायो रूप मैं अति प्रसन्न चित होइ।
आदि अन्त सो तेजमय देखि सकै नाहिं कोइ ॥४८॥
वेद यज्ञ अरु तप किये और कियेहू दान।
ऐसे मेरे रूपको तो विन लखै न आन ॥४९॥
रूप भयानक देखि कै तू जनि जियहि डराय।
अब भय को तू दूरि करि मेरे रूपहि चाय ॥५०॥

संजय उवाच।

अर्जुन सों ऐसे कही पहलो वपु प्रकटाय।
समाधान बहु विधि कियो भयते लियो बचाय ॥५१॥

अर्जुन उवाच।

रूप अनूप जु तुम धस्यो ता रूपै हौं देखि।
प्रकृति लही मैं आपनी भयो सचेत विशेखि ॥५२॥

श्रीभगवानुवाच।

देख्यो परसन रूप यह दुर्लभ दरश सुमित्त।
ता स्वरूप को देवता देख्यो चाहत नित्त ॥५३॥
दान यज्ञ तप विधि किये मोहिं न देखै कोइ।
बिन श्रम पारथ तू अबै मोको रह्यो जु जोइ ॥५४॥
भक्ति अनन्य जु कोउ करै सो देखै या भाइ।
नीके जानै तत्त्व सो मो में रहै समाइ ॥५५॥
मो निमित्त कर्मनि करै तजै भक्ति तजि और।
वैर न काहू सों धरै मो सें लहै सुठौर ॥५६॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगोनाम एकादशोऽध्यायः ११

द्वादश अध्याय।

अर्जुन उवाच।

जे सेवत तुम को सदा करि कर्मन के साज।

अक्षर ब्रह्महिं जे भजत बड़ो कौन कहि राज ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच।

जो मो में मन राखि कै सेवत सेवक भाय।
बहु श्रद्धा सों जो जुगत सो सबते अधिकाय ॥ २ ॥
जो ध्यावत हैं अक्षरहि जो नहिं प्रकट स्वरूप।
व्यापी मायाते परे अजर अचिंत्य अनूप ॥ ३ ॥
सब इन्द्रिन को रोकिकै लखत जो सबहि समान।
सब जीवन को हित करत मोहिं मिलै कर ज्ञान ॥ ४ ॥
तिन कलेश बहु होत है ब्रह्म लगायो चित्त।
रूप रेख जाके न सो दुख सो लहिये मित्त ॥ ५ ॥
जे सब करमन करत हैं अर्पन मोको जानि।
ध्यावत केवल भक्ति सों बहु उपासना ठानि ॥ ६ ॥
मृत्यु सहित भवउदधि ते ताको करत उधार।
मो में चित राख्यो उननि बहु भाइन निरधार ॥ ७ ॥
ताते अर्जुन बुद्धि मन मोंही में तू राखि।
या आगे मो देह में बासिहै तू अभिलाखि ॥ ८ ॥
जो तू मो में नहिं सकै चित अपनो ठहराय।
कर अभ्यास मो मिलन को मोहिं निरंतर ध्याय ॥ ९ ॥
जो अभ्यास न करि सकै कर्म समर्पहु मोहिं।

मेरे कर्मन करतहू सिद्धि होयगी तोहिं ॥१०॥
यहौ न जो तू करि सकै मो पर नहिं अनुराग।
सबै कर्म के फलन को अर्जुन कर तू त्याग ॥११॥
ज्ञान भलो अभ्यासते ताते ध्यान विशेष।
फल त्यागो ताते भलो ताते शांतहि लेष ॥१२॥
द्वेष न काहू सों करै मित्रभाव कर जानु।
अहंकार ममता तजै सुख दुख क्षमा समानु ॥१३॥
सदा रहै सन्तोष सों मन राखै निज हाथ।
प्राण बुद्धि मो में धरै वह प्यारो मो साथ ॥१४॥
वह काहू ते नाहिं डरै भय औरहि नाहिं देइ।
हर्ष क्रोध दोऊ तजै सो मोकों हरि लेइ ॥१५॥
चाह न काहू की करै रहै पुनीत उदास।
सब आरम्भन को तजै रहै सु मेरे पास ॥१६॥
प्रिय पाये आनन्द नाहिं अप्रिय लहै न द्वेष।
शोच कछू नाहीं करै तज शुभ अशुभ विशेष ॥१७॥
शत्रु मित्र को सम लखै सबै मान अपमान।
शीत उष्ण दुख सुख तजै संग करै नहिं आन ॥१८॥
अस्तुति निन्दा एकसी गहै मौन सन्तोष।
घर न करै थिर मत रहै लहै मुक्ति को ओष ॥१९॥

धर्म अमृत तोसों कह्यो ताहि जु सुनु सब कोइ।
श्रद्धाजित मेरो भगत मोहिं सु प्यारो होइ ॥२०॥
योग यज्ञ व्रत तप सबै कीन्हें एक समान।
सरस सार फल सबनि को मेरी भक्ति प्रधान ॥२१॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे भक्तियोगोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय।

—:o:—

अर्जुन उवाच।

प्रकृति कौन अरु पुरुष को को क्षेत्रज्ञ कहाजु।
यह जानन की लालसा ज्ञान ज्ञेय पुनि काजु ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच।

क्षेत्र कहत यह देह सों अर्जुन ज्ञानी लोइ।
जानत जो या देह को सो क्षेत्रज्ञ सु होइ ॥ २ ॥
सो मम रूप जु आतमा बसत सबन की देह।
सो है ज्ञान को जान के मेरो मत है एह ॥ ३ ॥
क्षेत्र जहांते हौं भयो जो है जैसे भाइ।
जो विकार ये मांझ है कहो संक्षेप सुनाइ ॥ ४ ॥

ऋषिन कह्यो बहु भांति जो, अरु छंदनहू भाखि ।
हेतवादि निश्चय जु करि कह्यो उपनिषद साखि ॥ ५ ॥
महाभूत अहंकार बुधि अरु मायाहू जानि ।
एकादश इन्द्री विषे पंच अगोचर मानि ॥ ६ ॥
इच्छा सुख दुख चेतना द्वेष धीरता देह ।
यह जो कह्यो संक्षेपसों क्षेत्र जानि तू लेह ॥ ७ ॥
क्षमा सरलता दम्भ बिनु हिंसा मद अभिमान ।
गुरुसेवा संयम करन थिरता शौच प्रधान ॥ ८ ॥
विषयनसों वैराग धरि तजे रहै अहंकार ।
जन्म मृत्यु दुख सुख जरा व्याधि दोष निरधार ॥ ९ ॥
नेह न पुत्र कलत्र सों ता दुख दुखी न होय ।
चित में धरै समानता भले बुरे को खोय ॥ १० ॥
अटल भक्ति मो में धरै सब में आतम जान ।
रहै सदा एकांत में तजै सभा सनमान ॥ ११ ॥
अध्यातम ज्ञानै धरै तत्त्वज्ञान को देखि ।
यह सब जो कछु मैं कह्यो यहै ज्ञान अवरेखि ॥ १२ ॥
कह्यो अमृतसम जानिबो जाते मुक्ति जो होय ।
कारण कारजते परे आदि ब्रह्म को जोय ॥ १३ ॥
सर्वत्रहि कर चरण शिर त्योंही मुख हग कान ।

व्यापि रह्यो सब जगत में मोहिं दशोदिशि जान ॥१४॥
सब विषयनते है रहित शुभतन को अभ्यास।
संग विना सब को धरत गुणातीत परकास ॥१५॥
जन्तु जिते चरहू अचर अन्तर बाहर सोइ।
सबते दूरि सु निकट है सूक्ष्म लखै नहिं कोइ ॥१६॥
तामें भेद कछू नहीं सब में रहत विभाग।
उपजावत नाशत सबनि पालत कर अनुराग ॥१७॥
ज्योतिनहूं की ज्योति है अंधकार ते पार।
त्यागजानिवो जीयमें सब कै है निरधार ॥१८॥
क्षेत्र ज्ञान अरु ज्ञेय मैं तोको दियो बताइ।
इन को जानै जो भगति लहै सु मेरो भाइ ॥१९॥
माया पुरुष अनादि हैं अर्जुन दोऊ जानि।
गुण विकार जे सब भये माया ही ते मानि ॥२०॥
कारण कारज करतऊ माया इन को हेत।
दुख अरु सुख के भोग को वहै पुरुष गहि लेत ॥२१॥
पुरुष प्रकृति मैं पैठिकै करत विषय को भोग।
ऊंचे नीचे जन्म को कारण गुण संयोग ॥२२॥
परमातम को देह ते न्यारो जानत लोइ।
साक्षी भर्त्ता भोगता ईश्वर निर्गुण होइ ॥२३॥

जो कोऊ ऐसे लखै प्रकृति पुरुष गुण भाइ।
सो क्योंहूं जग में रहै बहुरि न उपजै आइ ॥२४॥
देह मांझ आतम लखै कऊ किये असथान।
सांख्ययोग अरु कर्म कर लखै और सज्ञान ॥२५॥
जैसे सुनहीं जानहीं ते सुन औरन पैजु।
मम उपासना करत है भवभय मृत्यु तरैजु ॥२६॥
जिते जीव या जगत में थावर जंगम होत।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ते ते सब लहत उदोत ॥२७॥
परमेश्वर सब जन्तु में बैठ्यो एक समान।
तिनहिं सत्य बिनसे नहीं जो जानै सो जान ॥२८॥
ईश्वर को सब ठौर जो जानत समता भाय।
आतम ही सों होइ नाहिं रहै परम गति पाय ॥२९॥
माया करत जो कर्म सब जीव अकर्ता जोइ।
जानत जो या भेद को लखत आतमा सोइ ॥३०॥
एक आतमा में स्थित सब प्राणन को भाव।
आतम ही सों बिस्तरै लखै सु ब्रह्मै पाव ॥३१॥
आदि अन्त निरगुण परम अव्यय सोई होय।
देह मांझ यद्यपि रहै करै सु लिप्त न होय ॥३२॥
ज्यों प्रकाश सब में बसै सूक्षम परसत नाहिं।

त्योंहीं यह परमातमा लिप्त न देहन माहिं ॥३३॥
ज्यों प्रकाश एकै करै सब जग सूरज देव।
त्योंहीं सब की देह में परमातम को भेव ॥३४॥
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को भेद लखै जो कोइ।
जीव प्रकृति अरु मोक्ष को जानै मुक्ति न होइ ॥३५॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषनिर्देशयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय।

—:०:—

श्रीभगवानुवाच।

परम जो उत्तम ज्ञान सो तोकों कह्यो बताय।
जाहि जानि के मुनि सबै रहैं मुक्ति को पाय ॥ १ ॥
याही ज्ञानहि सेइकै मेरो लहौ स्वरूप।
प्रलय बिथा तिनको नहीं परैं न ते भवकूप ॥ २ ॥
ब्रह्म प्रकृति में योनि है तामें गर्भहि राखि।
उपजावत सब सृष्टि हों अर्जुन चित अभिलाखि॥ ३ ॥
जे जे मूरत होत हैं सब योनिन में आय।
तिनको हौं हीं बीज हौं हौं हीं पितु अरु माय ॥ ४ ॥

सत रज तम ये गुण भये मायाहीते जानि।
देह मांझ या जीव को येही बाँवत आनि॥५॥
निर्मल और प्रकाशकर सतगुण शांति सुभाइ।
ज्ञानसंग सुखसंग कर बांधत जीवहिं आइ॥६॥
रजगुण रागस्वरूप है तृष्णा सँग को हेत।
कर्मसंग करि जीव को ऐसे बंधन देत॥७॥
होत जु तम अज्ञानते मोहत सब को होय।
आलस निद्रा विकलता इनसों बाँधत जोय॥८॥
सत्त्वमगुण सुख में बढ़त कर्म रजोगुण होय।
आलस में तमगुण बढ़ै रहत ज्ञान सब खोय॥९॥
रजगुण तमगुण पेलि कै रहै सत्त्वगुण पूरि।
रज सब को पेलै जु तम सतते रजतम दूरि॥१०॥
सब द्वारन में देह के जबहिं प्रकाशत ज्ञान।
तबहिं बढ़ो है सत्त्वगुण अर्जुन तू यह जान॥११॥
बढ़त रजोगुण है जबहिं नर शरीर में आय।
लोभ करम उद्यम अरु न इन्हैं देइ प्रकटाय॥१२॥
अर्जुन तबहीं करत है तमगुण आइ प्रकास।
अलस मोह अज्ञानता मन में करत विलास॥१३॥
जो सत्तगुण की वृद्धि में तजै जीव निज देह।

तौ ज्ञानी के लोक में जाय करै सो गेह ॥१४॥
राजस में तजि प्राण को कर्मवन्त घर जाइ।
तमगुण में जे मरत हैं पशुन मांझ प्रगटाइ ॥१५॥
सुकृत कर्म जे होत हैं सात्त्विक फल अनिमक्ष।
रजगुण को फल दुःख है तम अज्ञान फलवृक्ष ॥१६॥
लोभ रजोगुण सों भयो सतगुणते है ज्ञान।
तम गुणते है विकलता मोह और अज्ञान ॥१७॥
सात्त्विक कंचन तुल्य है राजस मध्यम लोक।
तामस जान अधोगती पावत बहुविधि शोक ॥१८॥
गुणही को करतारकर जानै ज्ञानी कोइ।
मोहिं लखै गुणते परे मो में लीन सु होइ ॥१९॥
देह करत जे तीन गुण तिनको देह जु त्याग।
जन्म मृत्यु दुखते छुटै रहै मुक्ति में पाग ॥२०॥

अर्जुन उवाच।

जिन माहीं नहिं तीन गुण तिनके लक्षण कौन।
कैसे ताको आचरण प्रभु मोसों सु कहौन ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच।

मोह ज्ञान अस कर्म को जो जाने हिय माहिं।
बिन पाये चाहै नहीं वह दुख पावै नाहिं ॥२२॥

उदासीन बैठ्यो रहै दुख सुख चपल न होइ।
गुण सब कारज करत है यों जानै जो लोइ ॥२३॥
दुख सुख को समकर गनै कंचन माटी भाय।
प्रिय अप्रिय को तुल्य गिन स्तुति निंदा इक दाय ॥२४॥
तुल्य मान अपमान अरु शत्रु मित्र इक जानि।
सब आरंभन को तजै गुणातीत कहि तानि ॥२५॥
मोकों जो दृढ़ भक्ति सों सेवै चित के चाइ।
सो तीनों गुणते परे रहै ब्रह्म को पाइ ॥२६॥
अर्जुन हौं हीं ब्रह्म हौं मुक्ती मेरो रूप।
हौं अविनाशी हौं धरम आनँद परम अनूप ॥२७॥
आनँद को हौं धाम हौं घनीभूत हौं तेजु।
मोको सोई वश करै निचहि भक्ति कहे जु ॥२८॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय।

श्रीभगवानुवाच।

ऊरध जर शाखा तरे अविनाशी अश्वत्थ।

वेद पत्र जो जानहीं सो जानै सब अर्थ ॥ १ ॥
गुण सींचे शाखा बढ़ी विषया पल्लव भाय।
जर फैली कर्मन बँधी मनुज लोक में आय ॥ २ ॥
आदि अन्त नाहिं जानिये थान रूप नाहिं जाहि।
दृढ़ असंग हथियार लै दुसह मूल तरु ढाहि ॥ ३ ॥
चाह करै जा ठौर की फिरै न जाको पाइ।
सृष्टि भई जा पुरुषते ताकी शरण जु आइ ॥ ४ ॥
धामलोक प्रभुतनद्युतिसु ब्रह्महि कहकै अर्थ।
झांपि कर्म दृढ़ सुन महा वैकुण्ठहि सामर्थ ॥ ५ ॥
कामसंग अरु मोह तजि अध्यातम रत होइ।
सुख दुख तजि ताको लहै अविनाशी जो कोइ ॥ ६ ॥
पावक रवि अरु चन्द्रमा तहाँ न करै प्रकास।
फिरै न ताको पाइकै सो है मेरो बास ॥ ७ ॥
जीवलोक में अंश मम अविनाशी मो रूप।
मनहिं आदि इन्द्रीन को और प्रकृति को भूप ॥ ८ ॥
जा शरीर को तजत है जुहो करत सम्बन्ध।
इन्द्री ईश्वर सँग रहै जाइ संग ज्यों गन्ध ॥ ९ ॥
श्रवण नयन अरु नासिका त्वच अरु रसना मानि।
इनको गहि मन संग लै लहत जीव विष पानि ॥ १० ॥

इन्द्रीयुत नित सँग रहत करत विषय को भोग।
मूढ़ जीव कोऊ नहीं लखै सु ज्ञानी लोग ॥११॥
योगेश्वर यतननि किये देखत हैं हिय माहिं।
मूरख यतनन करतहू जीवहि देखैं नाहिं ॥१२॥
धारत हौं सब जगत को करि पुहुमी परवेश।
पोषत हौं सब औषधी ह्वैरस राशि मगवेश ॥१३॥
तेज जु है आदित्य में भासत सब संसार।
चन्द्र मांझ अरु अग्नि में सो मेरो निरधार ॥१४॥
हौं हीं जठराअग्नि हूँ सब देहन में आय।
प्राण अपान सहाइ सो डारत अन्न पचाय ॥१५॥
सब के हिय में हौं रहौं मोते ज्ञान विचार।
वेद सबै मो को कहैं मैं तिन को करतार ॥१६॥
लोक मांझ द्वै पुरुष हैं क्षर अरु अक्षर भाइ।
क्षर शरीर सों कहत हैं अक्षर जीव गनाइ ॥१७॥
उत्तम पुरुष जो और है परमातम के वेश।
तीन लोक जो धरत है करि कै निज परवेश ॥१८॥
क्षर औ अक्षरते परे हौं सबतें अधिकाउँ।
याते वेदरु लोक में पुरुषोत्तम मो नाउँ ॥१९॥
जो कोउ मो को नहिं भजत ते मूरख तू मान।

अर्जुन जे मो कों भजत तेई जान सुजान ॥२०॥
छिपी बात ग्रंथनि जु ही सो तोसों कहि दीन।
पारथ जे जानत यहै तेई बुद्धि प्रवीन ॥२१॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगोनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय।

श्रीभगवानुवाच।

अभय सत्त्व हिय साधता ज्ञान योग थिर होइ।
ज्ञान यज्ञ तप वेदरुचि धरम सरलता जोइ ॥ १ ॥
सदा अहिंसा सत्य में रहै क्रोध बिन मित्त।
दान शान्ति बहु विधि रचै दोष न आनै चित्त ॥ २ ॥
दया करै सब जंतु पर तजि चपलाई भाय।
लाज अकर्मनते सुमृदु व्यर्थ क्रिया छुटि जाय ॥ ३ ॥
तेज क्षमा शुचि धैर्ययुत तजै द्रोह अभिमान।
दैव संपदा जिन लही तामें गुण ये जान ॥ ४ ॥
दंभ दर्प अज्ञान रिस अरु अभिमान कठोर।
तामें ये गुण जिन लही असुर संपदा घोर ॥ ५ ॥

देवसंपदाते मुकत बंध आसुरी जोहि।
शोचै जनि अर्जुन भई देव संपदा तोहि॥६॥
देव आसुरी भेदते द्वै विधि सृष्टि है वेह।
पहिले कहि विस्तार सों अब दूजी सुनि लेह॥७॥
अविध और विधि जगत की आसुरि जानत नाह।
सत्य शौच आचार नहिं ये गुण हैं तिन माह॥८॥
श्रुति पुराण ईश्वरहि जे मानत नाहीं मूढ़।
मैथुनते संसार यह काम क्रोध हिय गूढ़॥९॥
यह मैं पायों है अबै लहौं मनोरथ और।
यह धन मेरे गेह में जारों है वह ठौर॥१०॥
अल्प बुद्धि हैं नष्ट जे यहै दृष्टि गहि लेत।
हिंसायुत कर्मनि करै रिपु युग क्षय के हेत॥११॥
करता बिन मानत जगत अथिर असत सो जानि।
उपजत है तिय पुरुषते ताके हित को मानि॥१२॥
गहि कै ऐसी दृष्टि को नष्टचित्त जो बुद्धि।
होत उग्र कर्मनुते जगत सहित बिन शुद्धि॥१३॥
भजत अयस्वज काम को दंभ मान मद पाइ।
गहत बुराई मोहते मांस और मद खाइ॥१४॥
जाको कछु परमान नहिं ता चिंता में लीन।

काम भोग है अति भलो निश्चय मानत हीन ॥१५॥
ते आशा पाशन बँधे काम क्रोध चित चाह।
जोरत धन अन्याय करि काम भोग निर्वाह ॥१६॥
मन वांछित मैं यह लहौं लहै न चाहत याह।
यह धन मेरे है जुरौ रहै जु और उनाह ॥१७॥
यह वैरी है मो हनो करौ और को अंत।
ईश्वर हौं भोगी जु हौं सुधी सिद्ध भगवंत ॥१८॥
मैं हौं धनी कुलीन हौं और न मोहिं समान।
पयोदेहमें दहि लहौं मोहित यों अज्ञान ॥१९॥
उन को मन अति भ्रमत है मोहजाल पर निच्च।
परत घोर अति नर्क में काम भोग के हिच्च ॥२०॥
निजवड़िआई नित कहत नवत न धन अभिमान।
नाममात्र यज्ञन भजत दंभी विना विधान ॥२१॥
अहंकार वल दर्प अरु काम क्रोध गहि लेत।
दोषी निज पर देह में मो को ते दुख देत ॥२२॥
मो द्रोही अरु मरतते पापी अधम निहारि।
जगत आसुरी योनि में तिन्हैं देत हौं डारि ॥२३॥
जन्म जन्मतें मूढ़ ते होत जु आसुर आय।
मो को ते पावत नहीं परत अधम गति जाय॥२४॥

नरक द्वार विधि तीनि हैं देत आप को नास।
काम क्रोध अरु लोभ पुनि इन छोड़े सुख वास॥२५॥
तीनों द्वार जु नरक के तिनमें छुटै जु कोय।
यतन करै कल्याण को तवहि परम गति होय॥२६॥
जे शास्त्रन विधि छोड़िकै करत क्रियावश काम।
सिद्धि लहैं नाहिं परमगति नाहिं सुख में विश्राम॥२७॥
ताते काज अकाज में तोको वेद प्रमान।
कर्मन करि तू जानि कै तिनको विधसु विधान॥२८॥
वेद कहत जु परोक्ष है मोको देत बताय।
मेरेई कर्मनि करै मेरी आज्ञा पाय॥२९॥
परंपरा है जन्म के श्रद्धा होत समान।
श्रद्धामें यह पुरुष है श्रद्धा ताहि प्रमान॥३०॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे दैवासुरसंपद्विभागयोगोनाम षोडशोध्यायः॥ १६॥

सप्तदश अध्याय।

अर्जुन उवाच।

श्रद्धायुत यज्ञहि करत जे वेदन की नीति।

सत रज तम जे थित कही कहिये तिन की रीति ॥१॥

श्रीभगवानुवाच।

श्रद्धा नर की तीनि विधि होत जु सहज सुभाइ।
सात्त्विक राजस तामसी सुनिये तिनके दाइ॥ २॥
परंपरा ही जन्मते श्रद्धा होत समान।
श्रद्धा में यह पुरुष है श्रद्धा ताहि प्रमान॥ ३॥
देवन सेवै सात्त्विकी राजस राँक्षस यक्ष।
भूत प्रेत गण जे भजें ते नर नाम सयक्ष॥ ४॥
चार तपस्या जे करैं जे न वेद मत होहिं।
भौर दंभ हंकार से काम राग बल गोहिं॥ ५॥
पंचभूत जे देह में तिन को वे दुख देत।
हिय, में मोहूको हनत ते हैं असुर अचेत॥ ६॥
तीनि भांति आहार हिय सब को रोवत होइ।
यज्ञ ज्ञान तप भेद ये मोपै सुनिये सोइ॥ ७॥
सुंदर थिर अति चीकनो सात्त्विक प्रिय आहार।
आयु सत्य अरु अंगबल प्रीति बढ़ावनहार॥ ८॥
दाहक रूखो उष्ण कटु तीक्षण खाटे खार।
शोक रोग दुख देत हैं ये राजस आहार॥ ९॥
जाहि रभे पहरुक भयो बासो उठो रिसाय।

ज़ूंठो और पवित्र नहिं भोजन तामस खाय ॥१०॥
विधिविधान सों कीजिये छांड़ि फलन की आश।
समाधान धरि हिये में शात्विक यज्ञ विलाश ॥११॥
करिकै फल की कामना और दंभ के भाय।
ऐसे जो यज्ञहि करै सो है राजस भाय ॥१२॥
बिन अन्नहि बिन दक्षिणा बिना मंत्र विधिहीन।
बिन श्रद्धा यज्ञहि करै सो है तामस दीन ॥१३॥
ज्ञानी द्विज अरु वेद को पूजै शुचि मृदु होइ।
ब्रह्मचर्य हिंसा तजै तप शरीर कर सोइ ॥१४॥
भय न करै जे प्रिय वचन हितकारी सत भाइ।
करै वेद अभ्यास पुनि वाचक तप या दाइ ॥१५॥
मन प्रसादजु मुखाद मृदु इन्द्रीनिग्रह मौन।
भाव शुद्ध यों कहत है मानस तपसी तौन ॥१६॥
श्रद्धासों नर तप करत सो है तीनों भांति।
फल इच्छा छांड़ै करै सोई सात्त्विक कांति ॥१७॥
पूजा आदर मान को और दंभ के काज।
सो तप राजस करत है चंचल छनक समाज ॥१८॥
देहै दुख दे मूढ़ है अरु हठ सों तप होय।
परको कष्ट दिखावही तामस तप है सोय ॥१९॥

दान देइ उपकार बिनु पात्र विप्र को देखि।
देश काल को जानि के सात्विक दान विशेखि॥२०॥
कीजै जो उपकार को फल की आशा मानि।
दीजै सो अति कष्टसों ताको राजस जानि॥२१॥
विना देश अरु काल बिन दीजै नीचहि दान।
बिन आदर अधिकारता तामस जाय बखान॥२२॥
ॐतत्सत ये ब्रह्म के नाम जो तीन प्रकार।
विप्र वेद अरु यज्ञ मुनि कीने पहिली बार॥२३॥
क्रिया यज्ञ जप दान तप करि पहिले ॐकार।
वेदवंत जे कहत हैं विधि विधान विस्तार॥२४॥
तत यह करिकै कहत हैं क्रिया यज्ञ तप दान।
फल अभिलाषा छांड़ि जे चाहत मुक्ति निदान॥२५॥
साधुभाव सतभाव को सत को करत उचार।
और भले पुनि करम हैं सत को गावत सार॥२६॥
यज्ञ ज्ञान तप की जु तिय ताहि कहत सुतनाम।
जा काजै ये कर्म हैं ताको सत विश्राम॥२७॥
अर्जुन सब यह असन है दुहूं लोक में साज।
श्रद्धा बिन हो मत जपत देत जु सबै अकाज॥२८॥
सत रज तम जग दान तप ब्रत है मोहीं हेत।

काम क्रिया कृत मन्त्र सब सिद्ध एक हरि हेत॥२६॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे गुणत्रयविभागयोगोनामसप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अष्टादश अध्याय।

—:०:—

अर्जुन उवाच।

त्यागतत्त्व जान्यौ चहत कहिये श्रीभगवान।
तत्त्व और संन्यास को न्यारो करो बखान॥ १॥

श्रीभगवानुवाच।

काम युक्ति कर्मन तजै ताहि नाम संन्यास।
कर्म फलनि को त्याग यह त्याग कहत सुखरास॥ २॥
कर्म छांड़िये दोषलौं कोउ कहत या नीत।
यज्ञ दान तप कर्म जिन तजे और यह रीत॥ ३॥
या ठौरहि पारथ जु तू मेरो निश्चय जान।
तीनि भांति को त्याग यह अर्जुन चित में आन॥ ४॥
यज्ञ दान तप कर्म्म यह कीजै तजिये नाहिं।
ताते पंडितजन इन्हैं गनत पवित्रन माहिं॥ ५॥
फल छांड़ै संगहि तजै कर्म करै चित्त लाय।

अर्जुन यह मेरो जु मत निश्चय उत्तम दाय ॥ ६ ॥
जो अवश्य करनो करम ताको छांड़ न देइ।
ते छांड़ें अज्ञानते सो तामस गति लेइ ॥ ७ ॥
यहै जानि कर्मन तजै मत देहो दुख होइ।
यह तो राजस त्याग है या में फल नाहिं कोइ ॥ ८ ॥
करनो कर्म अवश्य यह जानि जु कीजै कर्म।
संग और फल को तजै सात्त्विक त्याग सुधर्म ॥ ९ ॥
बुरे कर्म मनसों नहीं भले रहै नाहिं लाग।
बुद्धिवंत संदेह बिनु यह है सात्त्विक त्याग ॥१०॥
देहवंत ये कर्म सब नाहीं छाँड़ै ताहि।
कर्म फलन को जो तजै सोई त्यागी माहि ॥११॥
इष्ट अनिष्ट रु मिश्र फल होत कर्म के तीन।
अज्ञानिन को ये मिलैं ज्ञानिन के हों छीन ॥१२॥
महाबाहु मोपै सुनहु एते कारण पांच।
कहे सांख्य सिद्धान्त में काम सिद्ध को सांच ॥१३॥
अधिष्टान कर्ता जु है कारन बहुते भाइ।
नानाविधि व्यौपार अरु पंचम देव गनाय ॥१४॥
मन अरु वचन शरीर करि कर्म करत या साज।
भलो बुरो कोऊ करै इन बिन सरै न कांज ॥१५॥

जो नर आतम एक को मानत है करतार ।
देखतहू देखत नहीं ते नर मूढ़ गँवार ॥१६॥
जाकी बुधि नहिं लिप्त है अहंकार नहिं जाय ।
सो इन लोगन को हनत हनै न बंधन ताय ॥१७॥
प्रेरक तीनों कर्म के ज्ञान ज्ञेय ज्ञातार ।
करण कर्म कर्त्ता करम संग्रह तीन प्रकार ॥१८॥
त्रिविधि होत गुण भेदते ज्ञान कर्म करतार ।
गुणसंख्या में एक है जैसे सुन ये बार ॥१९॥
जाकर देखै जीव में अविनाशी इक भाइ ।
न्यारे में न्यारो नहीं सात्त्विक ज्ञान सुभाइ ॥२०॥
नाना भाइन में लखै न्यारो न्यारो ज्ञान ।
भिन्न लखै सब जीव में राजस ज्ञान सुजान ॥२१॥
पूरन जावै एक में बिन कारण के मित्त ।
स्वारथ बिन है अल्प अति तामस ज्ञान सुमित्त ॥२२॥
संगराम अरु द्वेष बिन तीन कर्म जो होय ।
तज फल इच्छा कीजिये सात्त्विक कर्म जु जोय ॥२३॥
जो कीजै करि कामना कैधौं करि अहंकार ।
जामें श्रम है अति घनो सो राजस निरधार ॥२४॥
पौरुष हिंसा शुभ अशुभ द्रव्य खरच विधि चार ।

जो कीजै अज्ञानते तामस कर्म निहार ॥२५॥
धरि धीरज उत्साह को तजै संग अहंकार ।
निर्विकार सिधि असिधि सम सात्त्विक कर्म करतार॥२६॥
रागी चाहै कर्म फल लुब्धक हिंसक होय ।
हर्ष शोक संयुक्त है अशुचि करै ता सोय ॥२७॥
सुध विन रहै विवेक विन शठहि आलसी नित्त ।
सब ही की निंदा करै अरु विषादयुत चित्त ॥२८॥
थोरे दिन के काज को वहुत लगावै बार ।
ताही को सव कहत हैं यह तामस करतार ॥२९॥
बुधि अरु धीरज तीन विधि होत गुनन के भाय ।
न्यारे २ सव कहौं अवहीं तुमहिं सुनाय ॥३०॥
काज अकारज भय अभय और प्रवृत्ति निवृत्ति ।
जानै मुक्ति न वंध सो सात्त्विक बुधि की वृत्ति ॥३१॥
धर्मन को लखि कार्य में करै अकारज मानि ।
तैसे हौं तैसे गनैं बुद्धि राजसी जानि ॥३२॥
जानै पापहि पुराय कर दंभ अज्ञानी होय ।
लखै अर्थ विपरीत सब बुद्धि तामसी सोय ॥३३॥
जासों इन्द्री रोकिये चित्त क्रिया अरु प्रान ।
योगयुक्ति निहचल महा धीरज सात्त्विक जान ॥३४॥

धर्म अर्थ अरु कामना जो धारत है आय ।
चाहै फलहि प्रसंगते धीरज राजस भाय ॥३५॥
जो भय शोक विषाद मद स्वप्नतान ठहरात ।
दुष्टबुद्धि छांड़ै नहीं धीरज तामस जात ॥३६॥
अब अर्जुन मोपै सुनौ सुख के तीन प्रकार ।
जाके अभ्यासै किये दुख को होइ निवार ॥३७॥
पहिले तो विषसो लगै बहुरि अमृत सो जोय ।
सो सुख सात्त्विक है कह्यो बुधिप्रसादते होय ॥३८॥
इन्द्रीविषय सँयोगते पहिले अमृत समान ।
पाछे जो विषसो लगै सो राजस सुख ज्ञान ॥३९॥
पहिले अरु पाछे दुखत मोहित करे जु देह ।
आलस निद्राते उठै तामससुख है येह ॥४०॥
सो पहुँची मैं कछु नहीं सुर में अरु आकास ।
सत रज तम तीनों गुननि बंध्यो न माया फांस ॥४१॥
द्विज क्षत्रिय अरु वैश्य के और शूद्र के कर्म ।
निज सुभाव गुणसों भयो न्यारे न्यारे धर्म ॥४२॥
शमअरुदमतपशौचपुनि सरलताजु अरु शांति ।
आस्तिक ज्ञान विज्ञान अरु ब्रह्मकर्म की भांति ॥४३॥
शूर तेज धीरज चतुर युद्धमाहिं न पराइ ।

तेई ठकुरई सों रहै क्षत्रिय कर्म सुभाइ ॥४४॥
खेती गौरक्षा वणिज वैश्यकर्म ये मानि।
सबही की सेवा करै शूद्रकर्म ये जानि ॥४५॥
अपने २ धर्मते सिद्धि लहै सब कोइ।
सो विधि अब मोपै सुनो कामसिद्धि जो होइ ॥४६॥
जाते उपजत जीव सब जिन कीनो विस्तार।
कर्म करै ताको भजै सिद्धि लहै नर सार ॥४७॥
नीकेहू परधर्मते निगुन भलो निज धर्म।
कछु पायन पावै नहीं करता अपनो कर्म ॥४८॥
दोष सहित निज धर्म लख रहै न क्योंहू त्याग।
दोष भरै आरंभ सब धूम सहित ज्यों आग ॥४९॥
लगनबुद्धि कहु नहिं करै जीते मन तन आस।
परम धर्म निहकर्म को पावै करि संन्यास ॥५०॥
सिद्धि पाइ परब्रह्म को जैसे पावै सार।
कहौं सु हौं संक्षेपसों निष्ठा ज्ञान अपार ॥५१॥
जगत रहे विधु सिन्धुसों धीरज सों मन धारि।
शब्द आदि विषया तजै राग द्वेष को मारि ॥५२॥
रहै दुख्यो एकान्त में लघु भोजन मन जीत।
ध्यानयोग तत्पर सदा यह विराग की रीत ॥५३॥

क्रोध परिग्रह काम बल दर्प और आकार ।
ममता तजि निर्मल रहै शांतियोग में सार ॥५४॥
ब्रह्मभयो परसन्न मन शोचत करै न चाह ।
सब जीवन को सम लखै पावै भक्ति प्रवाह ॥५५॥
पराभक्ति अति ऊँच है तामें कछू न हेत ।
सत संगतिते पाइये वसे प्रेम के खेत ॥५६॥
मोको जानै भक्ति कर जितनो होजा भाय ।
मोहिं जानि के तत्त्वसों मेरी भक्ति कराय ॥५७॥
मो कर्मनिको नित करै मेरो आश्रम पाइ ।
मो प्रसादते सो रहै अक्षय पदवी पाइ ॥५८॥
मनसों मोको कर्म करि मो तत्परता लेइ ।
बुद्धि योग को सेइकै मोहीं में चित देइ ॥५९॥
मो प्रसादते दुर्ग सब तज जै है अनयास ।
अहंकार तू बिनशनै लहिहै तू जु विनास ॥६०॥
लरो नहीं तू यह कहत अहंकार को मान ।
यह तोको आरूढ है प्रकृति लरै है आन ॥६१॥
अर्जुन अपने कर्म को तू राखै है सोइ ।
करो न चाहत मोहते परवश करि है जोइ ॥६२॥
ईश्वर सब के हिये में अर्जुन रहत सुगूढ़ ।

जीव भ्रमावर्त्त है सदा करि माया आरूढ़ ॥६३॥
होहु सदा वाकी शरण अर्जुन तू सब भाइ।
अविनाशी थिर शांति पद तापसादते पाइ ॥६४॥
ज्ञान कह्यो तुमसों जु मैं सो जग परगट नाहिं।
जो जानो सोई करो याहि सजो जिय माहिं ॥६५॥
जो कछु है सबते अधिक परम दुरो यह ज्ञान।
तू दृढ़ बुद्धि जो मित्र मो तो हित कहत बखान ॥६६॥
मोको भजि भजि नम्र ह्वै नमि मोमें मन राखि।
अन्त समय हो मोहिं में प्यारे यह तुम साखि ॥६७॥
सब धर्मन को छांड़िकै मो शरणहिं तू आइ।
दूर करत सब पाप हौं शोक तजो या भाइ ॥६८॥
जाके तप नहिं भक्ति नाहिं और शुश्रूषा नाहिं।
तासों तू यह जनि कहै मो देखो जग माहिं ॥६९॥
मो भक्तन सों जो कहै परम दुरो यह ज्ञान।
सो मेरी भक्तिहि लहै मो में रहै निदान ॥७०॥
मोको प्यारो बहुत यह हौं प्यारो हों जाहि।
वह मुहिं राखत हिये में हौं राखत हिय वाहि ॥७१॥
धर्मवाद जो हम कियो पढ़ै जु कोऊ जानि।
ज्ञानयज्ञ तिनहीं भजों यह मेरो मत मानि ॥७२॥

श्रद्धायुत दोषनि विना याहि सुनै जो कोय।
पुण्यवन्त लोकन लहै मुक्ति जु ताकी होय ॥७३॥
चित एकाकी हो सुनो तैं अर्जुन यह धर्म।
मिट्यो मोह अज्ञान तब और मिट्यो चितभर्म ॥७४॥

अर्जुन उवाच।

मोहयो आई शरण गह्यो सो श्रीभगवान।
भयो दूरि संदेह अब तुम आज्ञा परधान ॥७५॥

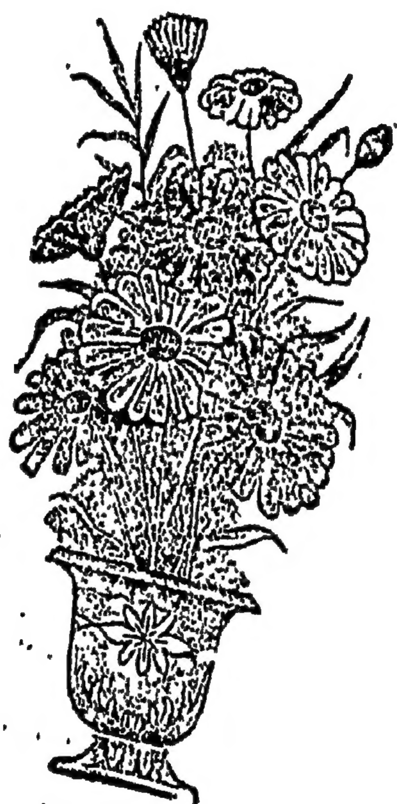
संजय उवाच।

हरि अर्जुन की बात ये सुनी जो यह मैं भाइ।
अचरज रूप अनूप अति रोम हर्ष चित चाइ ॥७६॥
परम दुरग मत यह जु हौं सुन्यो व्यास परसाद।
योगेश्वर श्रीकृष्णजू निज मुख कियो विवाद ॥७७॥
बारबार सुमिरत जुहौं कृष्णार्जुन आख्यान।
हर्ष होत मोको महा पुण्यपवित्र महान ॥७८॥
अद्भुत रूप श्रीकृष्णको सुमिरिसुमिरि हो जाहि।
हर्ष होत मोको महा विस्मय को निर्वाहि ॥७९॥
योगेश्वर श्रीकृष्णजू अर्जुन हैं जा ठौर।
तहां विजय अरु जीत है अटल संपदा और ॥८०॥
यह अद्भुत रतनावली निज मुख कियो बखान।

बारबार निरधार करि पराभक्ति को ज्ञान ॥८१॥
भक्तिवश्य श्रीकृष्णजू यहै कियो निरधार।
करै भक्ति इच्छा सबै यहै भक्ति को सार ॥८२॥
भगवद्गीता जो कोऊ पढ़ै सुनै मन लाइ।
पावै भक्ति अखण्ड सो श्री हरि सदा सहाइ ॥८३॥
गीता दिन प्रति उच्चरै सदा सुखी जग माहिं।
मनसा वाचा कर्मना तिहि सम कोऊ नाहिं ॥८४॥
जो कोउ चाहै भव तस्यो कृष्ण कमलदृग पास।
और सकल श्रम छांड़ि तो करि गीता अभ्यास ॥८५॥
जब लग स्मृति भानु की ताप तपत सब देश।
दृष्टि पस्यो तब लग नहीं हरि गीता राकेश ॥८६॥
हरिबल्लभ भाषा रच्यो गीता रुचिर बनाय।
सदाचार वरणन कियो अष्टादश अध्याय ॥८७॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगोनाम
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इति श्रीभगवद्गीता सम्पूर्ण



वेदान्त और योगसम्बन्धी पुस्तकें।

अनुरागसागर	।)	भक्ताम्बुनिधि	१॥।)
आत्मअनुभवशतक	-)॥	भागवत गुटका	।-)
आनन्दामृतवर्षिणी	।-)	भ्रमनाशक	=)॥
कैवल्यकल्पद्रुम	)॥।	श्रीमाधवराम सुखसागर	॥)
ग्रन्थ गुरु नानक साहब	६॥)	मुक्तिमार्ग १।=) सजिल्द	१॥=)
चैतन्यचन्द्रोदय	।≡)	याज्ञवल्क्यमैत्रीसंवाद	।)
तत्त्वज्ञान दर्शावनी	=)॥	युगलसंवाद बोधप्रकाश	।)
दोहावली	=)॥	योगवाशिष्ठ भाषा वार्तिक	८)
नृत्यराघवमिलन	-)॥।	विवेक प्रकाश	।-)
पारसभाग	३।)	विज्ञानलहरी भाषा	≡)
प्रमोदवनविहार	।)	वैराग्यप्रकाश	।)
विहारवृन्दावन	१।)	वैराग्यप्रदीप	।)
बीजक कबीरदास	१॥)	वैराग्यविनोद	)॥।
ब्रह्मसार	)॥	वैराग्यसंदीपिनी	=)॥
भगवद्गीता भाषा	।)	सिद्धान्तप्रकाश	।≡)॥
भक्तिसागर	३)	सुन्दरविलास	।-)
भक्तमाल (भाषावार्तिक)	२॥)	हरिहरसगुणनिर्गुण पदावली	≡)
भक्तमाल सटीक	१)	ज्ञानतरङ्ग	॥)
भक्तमाल सटीक	३॥।)	ज्ञानप्रकाश	॥)
भक्तमाल सटीक	७)	ज्ञानस्वरोदय	-)

धर्म्मशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ।

अष्टादश स्मृति	३)
कुलोचितधर्मशिक्षा भाषाटीका सहित	१।)
निर्णयसिन्धु-मूल	२।)
निर्णयसिन्धु सटीक	५)
भगवन्तभास्कर	॥=)
मनुस्मृति सटीक	६)
मनुस्मृति भाषानुवाद सहित	२॥)
मनुस्मृति उर्दू अनुवादसहित	२॥)
मानवधर्मसार सटीक	=)॥
मानवधर्मसार का सार सटीक	-)
मिताक्षरा सटीक	१५)
आचार काण्ड	४)
व्यवहार काण्ड	६।)
प्रायश्चित्त काण्ड	६)
याज्ञवल्क्य स्मृति	॥=)

नीतिसम्बन्धी ग्रन्थ।

चाणक्यनीतिदर्पण भाषाटीका	।)
धर्म्मनीतिदर्पण भाषानुवाद सहित	।)
मण्डलीमंडन	≡)॥
राजनीति भाषा	।-)
शुक्रनीति भाषा	॥-)

कर्मकाण्डसम्बन्धी ग्रन्थ।

कातीय पितृदर्पण	-)॥
मन्त्रार्थदीपिका सटीक	॥)
व्रतार्क सटीक	१॥)
सदाचारप्रकाश	।=)॥

इति ॥